अध्याय 7

यीशु का और विरोध

यीशु की प्रसिद्धि अब तक इतनी अधिक हो गई थी कि यरूशलेम से एक मज़बूत पक्षपाती झुकाव वाले धर्मशास्त्रीय प्रतिनिधि मण्डल को गलील में उसका विरोध करने के लिए भेजा गया। यरूशलेम यहूदियों के रूढ़ीवाद का केन्द्र था और स्पष्टतया वहां के अगुओं का यह मानना था कि गलील के रब्बी यीशु की शिक्षाओं की समस्या के साथ सही ढंग से नहीं निपट सकते।

यीशु के पास-पास के ''विशेषज्ञ'' (7:1-4)

[1]तब फरीसी और कुछ शास्त्री जो यरूशलेम से आए थे, उसके पास इकट्ठा हुए, [2]और उन्होंने उसके कुछ चेलों को अशुद्ध अर्थात् बिना धोए हाथों से रोटी खाते देखा - [3]क्योंकि फरीसी और सब यहूदी, पूर्वजों की परम्परा पर चलते हैं और जब तक भली भाँति हाथ नहीं धो लेते तब तक नहीं खाते; [4]और बाज़ार से आकर, जब तक स्नान नहीं कर लेते, तब तक नहीं खाते; और बहुत सी अन्य बातें हैं, जो उनके पास मानने के लिये पहुँचाई गई हैं, जैसे कटोरों, और लोटों, और ताँबे के बरतनों को धोना-माँजना।

आयतें 1, 2. जिस ढंग से मत्ती ने उस दल की जो यीशु का विरोध करने के लिए आया था, पहचान करवाई है, उससे पता चलता है कि उसका बड़ा विरोध **यरूशलेम** में से ही था (मत्ती 15:1)। **फरीसी और कुछ शास्त्री** इस विरोध में अधिक सरगर्म थे। उनमें से कइयों ने यीशु में मसीहा के विषय में पुराने नियम की भविष्यद्वाणियों के पूरा होने को समझ लिया होगा। यदि ऐसा है तो फरीसियों ने अच्छी तरह से सिखाए गए शास्त्रियों को अपने वकील चुना होगा।[1] उनका मानना था कि वे गलील के इस अनपढ़ प्रचारक को करारा जवाब दे सकते हैं।

जैसा कि 3:22 में संक्षिप्त टिप्पणी से पता चलता है, शास्त्रियों ने पहले जांच की थी। तब उन्होंने यीशु पर बालज़बूल की सहायता से दुष्टात्माओं को निकालने का आरोप लगाया था; परन्तु वह आरोप फरीसियों या किसी और को विश्वास नहीं दिला पाया था। यहूदी अगुवे किसी विवाद की खोज में थे जिससे वे यीशु पर दोष लगा सकें और उन्हें रस्मी हाथ धोने और रस्मी शुद्धता की अन्य आवश्यक बातों के लिए अपनी परम्पराओं के मामले में वह मुद्दा मिल गया था। 2:23-28 में सब्त के विषय में आलोचना भी इन्हीं लोगों की ओर से हुई होगी। ऐसी ही एक कमेटी यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के पास उसके अधिकार के बारे में पूछने के लिए गई थी (यूहन्ना 1:19, 25)।

बाइबल कहती है कि ''फरीसियों और कुछ शास्त्रियों'' ने **उसके कुछ चेलों को अशुद्ध अर्थात् बिना धोए हाथों से रोटी खाते देखा**। इस अवसर पर आलोचना की साफ़ सफ़ाई की यर्थात चिंता नहीं बल्कि ज़बानी परम्परा को मानने के लिए थी। उनका मानना था कि यदि कोई पापी व्यक्ति उन्हें छू ले तो वे औपचारिक रूप में अशुद्ध हो जाते (या उनके ''हाथ गंदे'' हो

जाते) हैं जब तक वे शुद्ध किए जाने वाली रस्मों को पूरा नहीं करते। उन रस्मों में दोनों हाथों को मलना और उन्हें पानी में डुबोना शामिल था।

औपचारिक शुद्धता को बनाए रखने के लिए, यहूदियों को खाने से पहले स्नान करना आवश्यक था (7:2, 5)। उन्हें कीटाणुओं की परवाह नहीं थी, क्योंकि कीटाणुओं के बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं थी।[2] उन्हें केवल इतना पता था कि पुराने नियम में शुद्ध करने की कुछ रस्में हैं, और उन्होंने नहाने धोने की प्रतिदिन की कुछ रीतियां बना ली थीं।[3] उन्होंने शुद्ध करने की ऐसी कई रस्मे निकाल ली थीं जिनकी आज्ञा व्यवस्था में कहीं नहीं दी गई।

लोगों पर बोझ डालने वाले केवल फरीसी ही नहीं थे। रोनाल्ड जे. करनेगन ने इसे इस प्रकार से कहा है: ''कई मामलों में जिन्हें यीशु ने पूर्वजों की परम्पराएं कहा, वे आज्ञाओं की व्याख्याएं थीं, जो शास्त्रियों ने किसी आज्ञा को अनजाने में तोड़ने से लोगों को रोकने के लिए बनाई थीं।''[4] इसलिए यहूदियों का आम तौर पर मानना था कि ज़बानी परम्पराओं को मानना उन्हें व्यवस्था के नियमों को तोड़ने से बचा लेता है।

पुराने नियम के याजकों के लिए तम्बू में काम करने से पहले अपने हाथ पांव धोना आवश्यक है (निर्गमन 30:17-21)। यह धोना शायद शारीरिक सफ़ाई बनाए रखने के लिए थी जो आत्मिक शुद्धता को भी दर्शाती थी। फिर भी आम लोगों के लिए इसकी आज्ञा नहीं थी। फरीसियों का मानना होगा कि याजकों के लिए यह धोना आवश्यक है ताकि साधारण लोगों को लगे कि वे अधिक धार्मिक हैं।

आयतें 3, 4. फरीसी साधारण लोगों को पापियों के रूप में देखते थे। रस्मी तौर पर धोने की बातों से यह विचार फैल गया कि उनकी अपनी भक्ति अज्ञानी लोगों की भक्ति से बढ़कर है। आयत 3 से हमें यह समझ में आता है कि **सब यहूदी पूर्वजों की परम्परा पर चलते** हुए **भली भांति हाथ धो**[ते] थे।[5] इस बात ने यीशु के चेलों को फरीसियों की नज़र में बिल्कुल अलग और भयंकर पापी ठहरा दिया।

''सब'' (πᾶς, *pas*) का अर्थ ''सामान्य लोग'' हो सकता है और नये नियम में आम तौर पर इसका अर्थ बड़ी संख्या है। मरकुस 1:5 कहता है कि ''सब'' लोगों ने यूहन्ना से बपतिस्मा लिया जबकि लूका 7:29, 30 स्पष्ट करता है कि फरीसियों ने यूहन्ना के बपतिस्मे को नकार दिया था।

''फरीसी और सब यहूदी'' **बाज़ार से आकर, जब तक स्नान नहीं कर लेते, तब तक नहीं खाते; और बहुत सी अन्य बातें हैं, जो उनके पास मानने के लिये पहुँचाई गई हैं, जैसे कटोरों, और लोटों, और ताँबे के बरतनों को धोना-माँजना।** ''धोना'' शब्द का अनुवाद βαπτίζω (*baptizō*) से किया गया है जिसका अर्थ हमेशा डुबोना, डुबकी या गोता होता है। यही शब्द उस ''धोने'' के लिए इस्तेमाल होता था किसी के उद्धार के लिए प्रभु का नाम लेने पर दी जाने वाली डुबकी में होता, जैसे प्रेरितों 22:16 में। परन्तु कुछ लोग तर्क देते हैं कि (*baptismos*, ''बपतिस्मा'') शब्द के सजातीय रूप का अर्थ ''धोना'' के साथ साथ ''छिड़कना'' हो सकता है, क्योंकि मेज़ों और सोफ़ों को डुबोया नहीं जाता था। KJV में उन वस्तुओं में जिन्हें ''धोना'' आवश्यक था, ''मेज़'' और ESV में ''भोजन पटल'' जोड़ा गया है।[6] दोनों में अतिरिक्त वाक्यांश सबसे बढ़िया या सबसे प्राचीन हस्तलेखों पर आधारित नहीं है

इस कारण ऐसे वाक्यांश NASB, NIV, NRSV, या ASV में नहीं मिलते। एल. ए. स्टॉफ़र ने चाहे अपने टीका के लिए KJV का इस्तेमाल किया परन्तु उसने कहा, "[*बैपटिसमोस* का अर्थ 'छिड़काव'] नये सिरे से परिभाषा ... अनावश्यक, कमज़ोर और पक्षपाती है।"[7]

7:3, 4 में यह व्याख्या इस बात का प्रमाण है कि मरकुस ने अन्यजाति पाठकों के लिए लिखा। यहूदी पाठकों को पहले से इन रस्मों का पता था।[8] हाथ धोने के मुद्दे से फरीसियों और यीशु के बीच बड़े झगड़े का पता चला जो कि यह तय करने में महत्वपूर्ण होना था कि अधिकार किसके पास है।

ये फरीसी कौन थे? यहूदी मत के इस गुट के लोग पहले जॉन हेरकेनस के शासनकाल (135 ई.पू.) में दिखाई दिए, जब उन्हें *Chasidim* के नाम से भी जाना जाता था, जिसका अर्थ है "परमेश्वर के प्रिय" या "परमेश्वर के वफ़ादार।" "फरीसी" (Φαρισαῖος, *Pharisaios*) के नाम का अर्थ है "अलग किए हुए" या "अलगाववादी।"[9]

यहूदियों का दावा था कि दो व्यवस्थाएं हैं, जिनमें से एक तो मूसा की लिखित व्यवस्था है और दूसरी परम्परागत व्यवस्था, जिसे मूसा द्वारा ज़बानी दिया गया था परन्तु पहले इसे लिखा नहीं गया था। फरीसियों की नज़र में, ज़बानी व्यवस्था मूसा को दी गई लिखित व्यवस्था के बराबर थी।

ज़बानी नियम 185 ई. के लगभग लिखित में दिए गए थे और उनका अनुवाद उस समय पाई जाने वाली समझ पर आधारित था। यह लिखा जाना तिब्रियास में हुआ, जब रब्बियों ने *मिशनाह* को संकलन करना शुरू किया। इस पुस्तक में पहली सदी ईसा पूर्व के निर्णय और परम्पराएं हैं, जो कि ज़बानी व्यवस्था पर आधारित माने जाते हैं।[10]

अंततः, फरीसीवाद और यहूदीवाद लगभग व्यवस्था प्रस्ती के पर्याय बन गए। मोडिन के रब्बी एलियाज़ार ने कहा, "यदि कोई मनुष्य ... व्यवस्था में ऐसे अर्थ बताए जो *हलक्खाह* के अनुसार न हों, तो उसे व्यवस्था का चाहे ज्ञान हो और उसके काम अच्छे हों, तो भी अगले संसार में उसका कोई भाग नहीं है।"[11]

ताल्मुड में, *मिशनाह* में ऐसी परम्पराओं का संग्रह है: "हे मेरे पुत्र, तोरह की बातों से भी बढ़कर शास्त्रियों की बातों [के मानने में] अधिक चौकसी कर, क्योंकि जो कोई शास्त्रियों के किसी भी नियम को तोड़ता है उसे मृत्युदण्ड मिलता है।"[12]

फरीसियों के मनुष्यों के बनाए नियमों की व्याख्या रब्बियों के द्वारा की जानी आवश्यक थी। हर महत्वपूर्ण रब्बी को इन परम्पराओं में और "व्याख्याएं" जोड़ना अपनी ज़िम्मेदारी लगती थी। उदाहरण के लिए, शास्त्री और फरीसी केवल हाथ धुलवाने नहीं बल्कि यह देखने भी आए थे कि इसके लिए पानी पत्थर के मटकों में रखा गया या नहीं, जिससे यह औपचारिक रूप में अशुद्ध न हो। हाथ न धोने वालों को "शिब्ता" नामक एक दुष्टात्मा के हमलों के लिए अपने आपको दे देना माना जाता था।[13] फरीसियों का "बीमारी से अशुद्ध हो जाने वाले लोगों के साथ थे कोई सम्बन्ध नहीं था। वास्तव में उन्होंने जीवन को अपने लिए कठिन और दूसरों के लिए दु:खदायी बना दिया था।"[14]

''तुम परमेश्वर का आदर अपने होठों से करते हो, अपने मनों से नहीं'' (7:5-8)[15]

[5]इसलिये उन फरीसियों और शास्त्रियों ने उससे पूछा, ''तेरे चेले क्यों पूर्वजों की परम्पराओं पर नहीं चलते, और बिना धोए हाथों से रोटी खाते हैं?'' [6]उसने उनसे कहा, ''यशायाह ने तुम कपटियों के विषय में बहुत ठीक भविष्यद्वाणी की; जैसा लिखा है: 'ये लोग होठों से तो मेरा आदर करते हैं, पर उनका मन मुझ से दूर रहता है। [7]ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्यों की आज्ञाओं को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं।' [8]क्योंकि तुम परमेश्वर की आज्ञा को टालकर मनुष्यों की रीतियों को मानते हो।''

यीशु ने पहले फरीसियों के ज़बानी व्यवस्था पर ज़ोर दिए जाने की समस्या का जवाब दिया। फिर उसने विशेष तौर पर इस पंथ की भारी शिक्षाओं से इनकार किया। उसके विरोध से फरीसियों की शक्ति और अधिकार पर ही चोट लगी। यीशु के लिए मनुष्य के बनाए नियमों और रीतियों का कोई महत्व नहीं था। किसी भी समूह के लिए सबसे बड़ी डांट मत्ती 23 में किसी मसले पर फरीसियों और शास्त्रियों के विरुद्ध थी। धार्मिक अगुवे इस तथ्य को नहीं समझ पाए कि यदि यीशु ने किसी को छू लिया, तो वह व्यक्ति रस्मी तौर पर अशुद्ध नहीं रह जाता था।

आयत 5. इसलिये उन फरीसियों और शास्त्रियों ने उससे पूछा, ''तेरे चेले क्यों पूर्वजों की परम्पराओं पर नहीं चलते ...?'' यीशु से झगड़ने वाली पंचायत को कोई ऐसा कारण नहीं मिल पाया जिसमें उसने मूसा की व्यवस्था को तोड़ा हो। इसलिए उन्होंने उन पर अपनी ''परम्पराओं'' को तोड़ने का इलज़ाम लगा दिया। ''परम्परा'' (παράδοσις, *paradosis*; 7:3) आवश्यक नहीं कि बुरी हो। 2 थिस्सलुनीकियों 2:15 में पौलुस की ओर से इस शब्द का इस्तेमाल प्रेरितों की ओर से कलीसिया के अगुओं को सौंपी गई शिक्षा के लिए किया गया है।

सफल परिवारों में देखा गया है कि परिवार को जोड़ने में परिवार की परम्पराएं बड़ी सहायक हो सकती हैं। परन्तु पवित्र शास्त्र के अधिकार से हटाने वाली धार्मिक परम्पराएं दोषी ठहराने की ओर ले जा सकती हैं और कुछ परम्पराएं इतनी मज़बूत हो गई हैं कि उन्हें मानने वालों को यह पता नहीं है कि वे मनुष्यों की बनाई हुई हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि हम मनुष्यों की बनाई परम्पराओं पर नहीं बल्कि परमेश्वर द्वारा ठहराई गई परम्परओं पर चल रहे हैं, हमें ध्यान से बाइबल की खोज करनी आवश्यक है। हम उसमें जिसकी परमेश्वर ने आज्ञा दी है, न जोड़े (प्रका. 22:18, 19)।[16]

जैसा कि कुछ लोग दावा करते हैं कि यीशु ने हर रीति का विरोध नहीं किया। उसने बपतिस्मे पर ज़ोर दिया और प्रभु भोज की स्थापना की, जो कि परमेश्वर की ओर से दी गई रीतियां हैं। उसने व्यवस्था में दिए गए याजकों के स्नान के आवश्यक होने को नकारा नहीं, न ही उसने खाना खाने से पहले कटोरों को धोने या हाथ धोने का विरोध किया। परन्तु फरीसी उस धोने की मांग कर रहे थे, जो अनावश्यक थी। यीशु ने उनके मनुष्यों के बनाए नियमों को नज़रअंदाज़ किया था, इस कारण फरीसियों ने उसे और उसके चेलों को दुष्ट लोग मान लिया।

आयतें 6, 7. यीशु ने फरीसियों के प्रश्न के अपने उत्तर में आगे कहा: **''यशायाह ने तुम कपटियों के विषय में बहुत ठीक भविष्यद्वाणी की; जैसा लिखा है: 'ये लोग होठों से तो मेरा**

आदर करते हैं, पर उनका मन मुझ से दूर रहता है। ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्यों की आज्ञाओं को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं।''' उसने शिक्षा (डॉक्ट्रिन) और जीवन के बीच सम्बन्ध को स्वीकार किया, जिसके बिना आराधना में किए जाने वाले प्रयास बेकार होने थे (देखें मत्ती 15:7-9)।

यीशु के उत्तर के दो स्तर थे जिसमें एक तो साधारण था जबकि दूसरा उससे गहरा। पहले उसने उन्हें ''कपटी'' (ὑποκριτής, *hupokritēs*) कहा, जिसका अर्थ उस समय ''भूमिका निभाना'' था; यह मंच के कलाकार के लिए इस्तेमाल होने वाला यूनानी शब्द है। यीशु ने फरीसियों को इस नाम से यहां पहली बार बुलाया। KJV में, ''कपटी'' (hypocrite) का अर्थ है बुरे लोग है (अय्यूब 34:30; 36:13)।[17] सिनोप के अक्विला के सम्पत्ति अनुवाद (LXX) में संशोधन करने तक,[18] यह शब्द किसी के धर्मी दिखने की कोशिश की सक्रियता से बुरा संकेत देता था; परन्तु यीशु इसका इस्तेमाल उस व्यक्ति के अर्थ के लिए कर रहा था, वैसा दिखाते हुए जो वह है नहीं, एक भूमिका निभाता है।[19] इसका अर्थ अभी भी वह व्यक्ति था ''जिसकी भलाई परमेश्वर को भाने के लिए नहीं बल्कि मनुष्यों को भाने के लिए बनाई थी, जो '*परमेश्वर* को महिमा मिले' नहीं कहता है बल्कि यह कहता है कि '*मुझे* श्रेय मिले।'''[20]

आज आवश्यक नहीं कि ''कपटी'' (hypocrite) शब्द में किसी बुरे व्यक्ति का संकेत हो। यह उस व्यक्ति की बात है जो बाहरी तौर पर सही चीज़ें करता है, परन्तु उसके व्यवहार से उसके मन और उसके विचारों का पता नहीं चलता। ''इसका अर्थ यह हुआ कि [7:6 में] कपटी, ढोंगी, धोखेबाज़, पाखण्डी, आस्तीन का सांप, भेड़ की खाल में भेड़िया है। वह वह होने का दिखावा करता है जो वह है नहीं।''[21]

यीशु यहूदी परम्परा के पूरे सिस्टम पर मनुष्य की बनाई ''ज़बानी व्यवस्था'' पर हमला कर रहा था। यहूदी अगुओं ने परमेश्वर की ओर दी गई व्यवस्था को दूसरों को दोषी ठहराने और अपनी गलतियों को सही ठहराने की बाली खाल निकालने में बदल दिया था। मत्ती 23:16-19 में यह स्पष्ट होता है:

> ''तुम पर हाय, हे अन्धे अगुवो, जो कहते हो, कोई मन्दिर की शपथ खाए तो कोई बात नहीं, परन्तु यदि कोई मन्दिर के सोने की सौगन्ध खाए तो उसे वह पूरी करनी पड़ेगी। हे मूर्खो और अंधो! कौन बड़ा है; सोना या वह मन्दिर जिससे सोना पवित्र होता है? फिर 'कोई वेदी की शपथ खाए तो कुछ नहीं, परन्तु जो भेंट उस पर है, यदि कोई उसकी शपथ खाए तो उसे वह पूरी करनी पड़ेगी।' हे मूर्खो और अंधो! कौन बड़ा है; भेंट या वेदी जिस से भेंट पवित्र होती है?'' (NKJV)।

यह पक्का है कि फरीसियों की सोच कर्मकांडवादी थी; वे व्यवस्था की लिखी बातों को तो मानते थे परन्तु आम तौर पर उसके भाव को भूल जाते थे। आज कई लोगों, का मसीह के लिए जिसने हम से प्रेम किया और अपने आपको हमारे लिए दे दिया, न होकर व्यवस्था की ख़ातिर व्यवस्था की आज्ञा मानने का रवैया है। झूठी शिक्षा को मानना और उस पर चलना परमेश्वर की आराधना करने के किसी भी प्रयास को ''व्यर्थ'' बना देता है (देखें मत्ती 15:8, 9)।

यीशु का यशायाह 29:13 का उद्धरण इब्रानी पुराने नियम से पूरा पूरा मेल नहीं खाता। अपने

समय में यहूदियों की प्रथा के अनुसार उसने इब्रानी के बजाय सप्तति (LXX) से उद्धृत किया।[22] शब्दों में आम तौर पर थोड़ा सा बदलाव मिलता है परन्तु बुनियादी अर्थ निश्चय रूप में वही रहता है।[23] इससे यह संकेत मिलता है कि यहूदी अगुवे और यीशु यूनानी भाषा में बात करते थे और LXX (पुराने नियम के यूनानी अनुवाद) को बड़ी मान्यता देते थे।

जो कुछ यशायाह ने अपने समय के लोगों के लिए कहा था वह यीशु के समय के यहूदियों के लिए भी उतना ही उपयुक्त था। इस हवाले में से दोहराना भविष्यद्वाणी के वचन की दोहरी प्रासंगिकता थी। इतिहास अपने आपको दोहरा रहा था; इसलिए यीशु के वर्तमान श्रोताओं के लिए परमेश्वर की पुस्तक का वही नियम लागू होता था। धर्म जब भी परमेश्वर के दिमाग से न होकर मनुष्य के दिमाग से निकलता है, तो इसके परम्परा बनने और गलत हो जाना बहुत आसान होता है।

हमें चाहिए परमेश्वर की व्यवस्था की जगह मनुष्य की चालाकी को न दें। वास्तविक धर्म मनुष्य के मन की उपज नहीं हो सकता। एक प्राचीन रब्बी ने कहा, "[लिखित] व्यवस्था की बातों को [मानने के] बजाय शास्त्रियों की बातों को मानने में अधिक चालाकी होती है।"[24] परन्तु "वास्तविक धर्म मनुष्य की शानदार खोजों से नहीं बल्कि परमेश्वर की आवाज को केवल सुनने और मानने से आता होना आवश्यक है।"[25]

आयत 8. यीशु ने यशायाह में से उद्धृत ही नहीं किया बल्कि अपने सुनने वालों के लिए इस वचन की व्याख्या करते हुए अपनी उतनी ही अधिकारपूर्ण टिप्पणी जोड़ दी: "**तुम परमेश्वर की आज्ञा को टालकर मनुष्यों की रीतियों को मानते हो।**" नये नियम में यीशु के शब्द पुराने नियम के किसी भी "यहोवा यों कहता है" जितने भी अधिकार भरे हैं।

यहूदी लोग लोगों पर परमेश्वर के लिखित वचन से बढ़कर अपनी परम्पराओं को कैसे थोप सकते थे? उनका विश्वास था कि ज़बानी शिक्षा पहले परमेश्वर की ओर से मिली और उसे लिखे हुए से अधिक महत्व दिया जाए। परन्तु यीशु की नज़र में परमेश्वर की लिखित व्यवस्था सब कुछ थी।

"तुम परमेश्वर के वचन को टाल रहे हो" (7:9–13)[26]

9उसने उनसे कहा, "तुम अपनी परम्पराओं को मानने के लिये परमेश्वर की आज्ञा कैसी अच्छी तरह टाल देते हो! 10क्योंकि मूसा ने कहा है, 'अपने पिता और अपनी माता का आदर कर,' और 'जो कोई पिता वा माता को बुरा कहे, वह अवश्य मार डाला जाए।' 11परन्तु तुम कहते हो कि यदि कोई अपने पिता वा माता से कहे, 'जो कुछ तुझे मुझ से लाभ पहुँच सकता था, वह कुरबान अर्थात् संकल्प हो चुका।' 12तो तुम उसको उसके पिता वा उसकी माता की कुछ सेवा करने नहीं देते। 13इस प्रकार तुम अपनी परम्पराओं से, जिन्हें तुम ने ठहराया है, परमेश्वर का वचन टाल देते हो; और ऐसे ऐसे बहुत से काम करते हो।"

आयत 9. फरीसियों ने मूसा की व्यवस्था के कुछ नियमों को न मानने के तरीके निकाल लिए थे। उन्होंने लालच को छिपाने के लिए एक परम्परा बना ली थी। यीशु उनकी प्रशंसा करते हुए लगा: "**तुम अपनी परम्पराओं को मानने के लिये परमेश्वर की आज्ञा कैसी अच्छी तरह**

टाल देते हो!'' यह कहते हुए कि वे कितने ''होशियार'' हैं वह व्यंग्य[27] या कटाक्ष का इस्तेमाल कर रहा था। AB में कहा गया है, ''तुम अपनी [मनुष्य की बनाई] परम्परा और नियमों को मानने के लिए परमेश्वर की आज्ञा को रद्द करने और प्रभावहीन बनाने में कितने माहिर हो।'' यीशु कह रहा था कि परमेश्वर की आज्ञा को तोड़कर इसे धार्मिक दिखाने में उनका तरीका कितना चतुराई भरा था। ऐसा करके वे वास्तव में अपने आपको ईश्वर बना रहे थे![28] वे ''परमेश्वर के वचन'' को नज़रअंदाज़ कर रहे, रद्द रहे या वास्तव में ''टाल'' रहे थे (7:13)।

आयतें 10-12. ''क्योंकि मूसा ने कहा है, 'अपने पिता और अपनी माता का आदर कर,' और 'जो कोई पिता वा माता को बुरा कहे, वह अवश्य मार डाला जाए।' परन्तु तुम कहते हो कि यदि कोई अपने पिता वा माता से कहे, 'जो कुछ तुझे मुझ से लाभ पहुँच सकता था, वह कुरबान अर्थात् संकल्प हो चुका।' तो तुम उसको उसके पिता वा उसकी माता की कुछ सेवा करने नहीं देते।''

ये लोग परमेश्वर से प्रेम करने का दावा करते थे, जबकि अपने माता-पिता के लिए प्रेम नहीं दिखाते थे। इसलिए उनमें परमेश्वर के लिए सच्चा प्रेम नहीं था! 1 यूहन्ना 4:20 में ''भाई'' की जगह ''माता-पिता'' जोड़कर हम सही करेंगे: ''यदि कोई कहे, कि मैं परमेश्वर से प्रेम रखता हूं; और अपने [माता-पिता] से बैर रखे; तो झूठा है: क्योंकि जो अपने [माता-पिता] से, जिसे [जिन्हें] उसने देखा है, प्रेम नहीं रखता, तो वह परमेश्वर से भी जिसे उसने नहीं देखा, प्रेम नहीं रख सकता।'' फरीसी यीशु द्वारा उद्धृत आज्ञा ''अपने पिता और अपनी माता का आदर कर'' के उल्ट करते थे।[29]

परिवार के स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं टूटने थे, चाहे ऐसा समय आना था जब हमारे प्रभु की वफ़ादारी माता-पिता की वफ़ादारी से बढ़कर होनी आवश्यक हो (10:29)। व्यवस्था के अधीन पांचवीं आज्ञा तोड़ने वालों का अधिकृत दण्ड मृत्यु था। परमेश्वर की आज्ञा वाक्य के पहले भाग के साथ खत्म नहीं होती, बल्कि इसके आगे अत्यधिक कठोर दण्ड की बात की गई: ''जो अपने पिता या माता को श्राप दे वह भी निश्चय मार डाला जाए'' (निर्गमन 20:12; 21:17)। यीशु यह संकेत दे रहा हो सकता है कि परमेश्वर की व्यवस्था को तोड़कर उसकी जगह मनुष्यों की बनाई परम्पराओं को रखने पर फरीसियों को यही मिलना था।

भक्तिपूर्ण जीवन से सम्बन्धित हमारी शिक्षा में बजुर्गों का आदर करने का विषय आम तौर पर नज़रअंदाज़ कर दिया है। बच्चों को पहले पूरे परिवार के प्रति घर में धार्मिकता दिखाना सीखना आवश्यक है। उन्हें नये नियम की यह शिक्षा दी जानी चाहिए कि एक दिन वे अपने माता-पिता या दादी दादा या नानी-नाना की देखभाल के लिए ज़िम्मेदार हो सकते हैं। हम पढ़ते हैं, ''यदि किसी विधवा के बच्चे या नातीपोते हों, तो वे पहले अपने ही घराने के साथ भक्ति का बर्ताव करना, और अपने माता-पिता आदि को उन का हक्क देना सीखें, क्योंकि यह परमेश्वर को भाता है'' (1 तीम. 5:4; ESV)।

''कुरबान'' (Κορβᾶν, *Korban*) शब्द वह था जिसका मूल अर्थ ''परमेश्वर को अर्पित किया हुआ ... *दान,''*[30] परमेश्वर को दी गई भेंट, या परमेश्वर को कुरबान की गई कोई चीज़ था। कोरबान का धन मन्दिर में जमा किया जाता था और किसी पुत्र द्वारा इसमें से कुछ भी अपने माता-पिता पर खर्च किए बिना इस्तेमाल किया जा सकता था। जब तक इसे कोरबान के

रूप में माना जाए तब तक वह इस धन को अपने कब्जे में भी रख सकता था।

इसके अलावा जिस व्यक्ति ने कर्ज दिया हो, वह अपने देनदार से एक प्रकार के "धार्मिक ब्लैकमेल" का इस्तेमाल करते हुए कह सकता था, "जो कर्ज तूने मेरा देना है वह कोरबान है; इसलिए मुझे लौटाने के लिए तुम परमेश्वर के कर्ज़दार हो।"[31] इसके विपरीत कर्ज़दार उस धन में से कुछ भाग मन्दिर को देकर बड़ा भाग अपने लिए रख सकता था। ईमानदारी से कर्ज़ देने और बजुर्ग या बीमार माता-पिता की सहायता के लिए अपने धन को इस्तेमाल से बचने का एक तरीका था।

यह पक्का नहीं है कि कोई शास्त्री अधिकारिक रूप में ऐसी रीतियों का समर्थन करता हो, परन्तु स्पष्टतया यह बिना आम लोगों द्वारा गलत ठहराए या शायद साधारण लोगों की जानकारी के बिना किया जाता था। परन्तु यीशु को इसका पता था और उसने सिस्टम फरीसियों के क्रोध को अपने ऊपर लेते हुए खुलकर इस पर बात की।[32]

इस सिस्टम का कपट इतना बदनाम था कि मूर्तिपूजक लोग भी इसमें से देख सकते थे। बाद में रब्बियों को इसकी असंगतियों की मूर्खता पता चल गई और उन्होंने इस रस्म को नकार दिया, चाहे यीशु के समय कुछ लोग साफ़ तौर पर इसे मानते थे।

बाइबल के विद्वान आज नये नियम के वचनों की ऐसी व्याख्याएं दे सकते हैं जिनकी पुष्टि नहीं हो सकती। उनकी शिक्षाओं से कई बार अर्थ उससे जो बाइबल बताती है, लगभग उल्ट हो जाता है। यहूदी अगुवे इस प्रकार का पाप करने के दोषी थे।

आयत 13. पतित समाज की पहचान बुज़ुर्गों की परवाह न करना है। यीशु ने कहा कि माता-पिता को आदर न दिखा पाना **परमेश्वर का वचन टाल**ना था। इसमें आवश्यकता पड़ने पर और जब बच्चे कर सकते हों, अपने माता-पिता की सहायता करना शामिल होगा। साफ़ है कि यहां पर कुरबान के विचार को बदनाम किया जा रहा था, चाहे इसका नाम नहीं दिया गया।

ऐसे ऐसे बहुत से काम करते हो[33] परमेश्वर की व्यवस्था के अतिरिक्त फरीसियों द्वारा निकाले गए बचाव के और रास्तों की बात हो सकती है। यीशु उन्हें और उनकी शिक्षा को अच्छी तरह से जानता था, चाहे उनकी कुछ प्रथाएं उनके बीच गुप्त मानी जाती थीं।[34]

मत्ती में, चर्चा के इस भाग के आगे चेलों का प्रश्न है, "क्या तू जानता है कि फरीसियों ने यह वचन सुनकर ठोकर खाई?" (15:10-20)। यीशु की अगली टिप्पणी से उनका और भी अधिक अपमान हुआ: "हर पौधा जो मेरे स्वर्गीय पिता ने नहीं लगाया, उखाड़ा जाएगा। उन को जाने दो; वे अंधे मार्गदर्शक हैं और अंधा यदि अन्धे को मार्ग दिखाए, तो दोनों ही गड़हे में गिर पड़ेंगे" (मत्ती 15:13, 14)।

यहां पर उसने इस बात की कोई परवाह नहीं की कि उन्होंने उनके बारे में कही उसकी बात को सुना है या नहीं। उसने लगभग उन्हें चुनौती दे डाली की कि वे उसे मार डालने का कारण ढूंढें।

''बाहर उसे कोई कोई चीज़ मनुष्य को अशुद्ध नहीं कर सकती''
(7:14-16)[35]

[14]तब उसने लोगों को अपने पास बुलाकर उनसे कहा, ''तुम सब मेरी सुनो, और समझो। [15]ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मनुष्य में बाहर से समाकर उसे अशुद्ध करे; परन्तु जो वस्तुएँ मनुष्य के भीतर से निकलती हैं, वे ही उसे अशुद्ध करती हैं। [[16]यदि किसी के सुनने के कान हों तो सुन ले।]''

आयत 14. यीशु ने ज़बानी परम्परा के अधिकार पर अपने आक्रमण का कारण बताने के लिए **लोगों को अपने पास बुला** लिया। उसने कहा, ''**तुम सब मेरी सुनो, और समझो।**'' यह जटिल विषय जिसकी उसने बात की, तभी समझ में आ सकता था यदि उसके सुनने वाले मन लगाकर प्रयास करते।

चेलों ने सचमुच में फरीसियों की परम्परा के अनुसार हाथ धोए बिना खाना खाया था। प्रश्न यह था कि यह परमेश्वर की दृष्टि में पाप था या नहीं। यदि रस्मी नियम (अर्थात ज़बानी परम्परा) सही थी तो चेले गलत थे।

चाहे यीशु ने फरीसियों को माता-पिता को आदर देने से बचने के उनके ढंग के बारे में उलझन में डाल दिया था, परन्तु इससे उसके चेले सही नहीं ठहर गए। उनकी कार्यवाही के बचाव में यीशु को यह दिखाने के लिए कि ज़बानी परम्परा लिखित व्यवस्था का कैसे उल्लंघन था, उसके पूरे ढांचे पर हमला करना पड़ा।

यदि बाइबल के अधिकार की हमारी व्याख्या का आधार परम्पराएं होनी थीं तो लिखित बाइबल के होने का क्या मतलब होना था? इस सूची से पता चलता है कि नये नियम में परमेश्वर के प्रकाशन के विरोध में मनुष्य की परम्पराएं क्या करती हैं:

मनुष्य की परम्पराएं	**परमेश्वर की सच्चाई**
बाहरी रूपों की गुलामी	मन के विश्वास की छूट
तुच्छ नियम	बुनियादी सिद्धांत
दिखावटी भक्ति	असली भीतरी पवित्रता
परमेश्वर के वचन की जगह	परमेश्वर के वचन को ऊंचा करना[36]

परमेश्वर की आज्ञाओं की जगह परम्परा को देना साफ़ तौर पर परमेश्वर की आज्ञा तोड़ने का कारण बनता है।

आयत 15. यीशु की घोषणा कि मनुष्य को कौन सी बात अशुद्ध करती है, यहूदियों के लिए चौंकाने वाली थी। उसने कहा, ''**ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मनुष्य में बाहर से समाकर उसे अशुद्ध करे; परन्तु जो वस्तुएँ मनुष्य के भीतर से निकलती हैं, वे ही उसे अशुद्ध करती हैं।**'' बहुत सम्भावना है कि किसी रूढ़ीवादी यहूदी ने यीशु के उपदेश को नहीं माना होगा। लैव्यव्यवस्था 11 में उन पशुओं की एक लम्बी सूची है जिन्हें ''अशुद्ध'' कहा गया यानी जो मनुष्य के भोजन के लिए अयोग्य थे। दूसरी सदी ईसा पूर्व के आरम्भ में अंतियोकुस चतुर्थ

(''एपिफेनस'') ने यहूदी विश्वास को खत्म करने की कोशिश की थी। इस समय के दौरान उसने यहूदियों को सूअर का मांस खाने को विवश किया था।[37] सैकड़ों यहूदी अपने विश्वास के विरुद्ध यह अपराध करना मानने के बजाय मर गए। 164 ई.पू. में अंतियोकुस एपिफेनस की मादा में एक अभियान पर मृत्यु हो गई।[38] यहूदियों ने यही सोचा होगा कि परमेश्वर ने अपनी चुनी हुई कौम के साथ दुर्व्यवहार करने के लिए राजा की मृत्यु ईश्वरीय प्रबन्ध के अनुसार करवाई।

यीशु के सुनने वालों के लिए, उसकी बात को मान लेने का अर्थ लगभग यही कि वे अपने इतिहास को नकार दें। उसके सबसे नज़दीकी चेले भी उसकी ताड़ना के लिए शायद ही तैयार थे। यीशु औपचारिक अशुद्धता की पूरी अवधारणा को खत्म करने की तैयारी कर रहा था। यीशु ने कभी भी औपचारिक शुद्धता की मूसा की व्यवस्था की शर्तों को मानने के महत्व को कम नहीं किया। परन्तु उसने संकेत दिया कि ''शुद्ध'' और ''अशुद्ध'' के भेदों को मिटाने का समय निकट आ चुका था।

परमेश्वर के अपने लोगों के साथ व्यवहारों के शवकाल के समय के लिए रस्मी व्यवस्था थी। यह उनके एक अलग और विशेष जाति और कौम बनने के लिए उनकी आवश्यकता थी। इन नियमों से यहूदियों को अन्यजातियों से अलग बनाए रखने में सहायता मिली। यहूदियों को किसी अन्यजाति के घर में खाना खाने की भी अनुमति नहीं थी। इसमें साफ़ सफ़ाई और स्वास्थ्य के कारण हो सकते हैं। गलातियों 4:9 में, पौलुस ने इन बातों को ठीक ही ''कमज़ोर और तुच्छ बातें'' कहा है, जिसका अनुवाद हुआ है (NKJV), ''कमज़ोर और निकम्मी शक्तियां'' (NIV), ''कमज़ोर और संसार के व्यर्थ मूल नियम'' (ESV), या ''कमज़ोर और व्यर्थ मूल बातें'' (NASB) कहा। औपचारिक अशुद्धता से आत्मा भ्रष्ट नहीं हो सकती।

फरीसियों को यीशु की बात समझ में नहीं आई। उन्हें लगा कि यीशु ''पापियों'' के साथ खाने के लिए घृणित है। उनका मानना था कि उनके साथ उसकी संगति ने उसे दूषित कर दिया था। पतरस के लिए किसी अन्यजाति के घर में प्रवेश करने की बात इतनी चौंकाने वाली इसी व्यवहार के कारण थी।

खाने से पहले हाथ न धोना, हो सकता है कि बहुत अच्छी आदत न हो, परन्तु यह किसी को परमेश्वर की दृष्टि ''पापी'' नहीं बता देता। फरीसियों का मानना था कि औपचारिक शुद्धता की उनकी कठोर व्याख्या को न मानने वाला व्यक्ति स्वतः ही पापी और उनकी संगति के अयोग्य हो जाता था। परन्तु औपचारिक अशुद्धता आत्मिक अशुद्धता का केवल एक प्रतीक था, जो पाप के द्वारा प्रबल होता है। ''शुद्ध'' और ''अशुद्ध'' का सम्पूर्ण यहूदी सिस्टम यीशु की इस शिक्षा में कि व्यक्ति को वास्तव में कौन सी बात अशुद्ध करती है पूरा हो गया।

आयत 16. यीशु की टिप्पणी ''**यदि किसी के सुनने के कान हों तो सुन ले**'' सुझाव देती है कि उसकी बात को सुन के समझने की ज़िम्मेदारी उसके सुनने वालों की थी।[39] यदि हम अपने ऊपर सही ढंग से लागू करें तो कठिन विषय भी समझ में आ सकते हैं। यीशु की यही शिक्षा है और हमें उसकी बातों को सही ढंग से सुनने के लिए तैयार होना आवश्यक है।

मनुष्य को वास्तव में अशुद्ध कौन सी बात करती है (7:17-23)[40]

17जब वह भीड़ के पास से घर में गया, तो उसके चेलों ने इस दृष्टान्त के विषय में उस से पूछा। 18उसने उनसे कहा, ''क्या तुम भी ऐसे नासमझ हो? क्या तुम नहीं समझते कि जो वस्तु बाहर से मनुष्य के भीतर जाती है, वह उसे अशुद्ध नहीं कर सकती? 19क्योंकि वह उसके मन में नहीं, परन्तु पेट में जाती है और संडास में निकल जाती है?'' यह कहकर उसने सब भोजन वस्तुओं को शुद्ध ठहराया। 20फिर उसने कहा, ''जो मनुष्य में से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है। 21क्योंकि भीतर से, अर्थात् मनुष्य के मन से, बुरे बुरे विचार, व्यभिचार, चोरी, हत्या, परस्त्रीगमन, 22लोभ, दुष्टता, छल, लुचपन, कुदृष्टि, निन्दा, अभिमान, और मूर्खता निकलती हैं। 23ये सब बुरी बातें भीतर ही से निकलती हैं और मनुष्य को अशुद्ध करती हैं।''

आयत 17. यीशु के **चेलों ने इस दृष्टान्त के विषय में उस से पूछा**। स्पष्टतया वे इन बातों से सदमे में आ गए थे, जो यरूशलेम के धार्मिक विद्वानों की शिक्षाओं से बिल्कुल अलग थे। ''दृष्टांत'' (παραβολή, *parabolē*) शब्द का इस्तेमाल असाधारण ढंग में किया गया है। करनाघन ने लिखा है, ''मरकुस 7:14-23 को विडम्बना से भरा दृष्टांत कहा जा सकता है। इसमें मरकुस के अन्य दृष्टांतों का रूप है परन्तु सार नहीं।''[41] इस विवरण में कोई ''कहानी'' नहीं बल्कि समझने के लिए नई शिक्षा थी। यीशु किसी बात के लिए जिसे समझना कठिन होता इस शब्द का इस्तेमाल किया, ''कहावत'' जो कुछ हद तक छिपी हुई थी।[42]

चेलों ने इस ''दृष्टांत'' के बारे में पूछा, जो कि इस विषय पर था कि कौन कौन से भोजन खाए जा सकते हैं एक नई और अनोखी शिक्षा (किसी विश्वासी यहूदी के लिए) थी। यीशु की शिक्षा का यह ढंग कई बार उनके लिए उलझाने वाला होता था और उन्हें यकीन नहीं होता था कि यीशु की जिस बात को वे सुन रहे हैं वे अशुद्धता के प्रचलित नियमों के विपरीत है।

आयतें 18, 19. यीशु अपने चेलों से बड़ी बेबाकी से बात करता था, उन्हें ''मंद-बुद्धि'' भी कह देता था: ''**क्या तुम भी ऐसे नासमझ हो?**'' बाद में उन्हें आत्मा मिलने पर उन्हें पूरी समझ आनी थी (यूहन्ना 14:26; 16:13)। जब कोई मसीह में परिवर्तित हो जाता है, तो वह और भी समझने के योग्य हो जाता है। प्रेरितों को ''प्रकाशन'' और ''प्रेरणा'' मिलती थी। आज के मसीही लोगों को इन दोनों में से कुछ नहीं मिलता, न ही हमें ''रोशनी'' मिलती है, जैसा कि आम तौर पर दावा किया जाता है। जब हम सच्चाई की आज्ञा मान लेते हैं, तो हम बाइबल में बताई गई सच्चाइयों से और अच्छी तरह से परिचित हो जाते हैं। प्रभु के काम में और अधिक दिचलचस्पी लेते हुए और उसके जैसे और बनकर हम ''ज्ञान में बढ़ते'' हैं। इस नये रवैये के साथ हम वैसे बढ़ेंगे जिसकी आज्ञा 2 पतरस 1:5-10 में दी गई है, जहां बढ़ने के कुछ कदम बताए गए हैं। जब हम *अगापे* प्रेम में विश्वास के शिखर तक पहुंच जाते हैं (2 पतरस 1:7), तो हमें और ज्ञान तथा ''कभी ठोकर न खाने'' की क्षमता के द्वारा फलदायक होने के दो अनुग्रहों का विश्वास दिलाया जाता है पक्के किए जाते हैं (2 पतरस 1:10)।

मत्ती 15:12 बताता है कि चेलों ने यीशु से कुछ सावधानी बरतने को कहा, क्योंकि फरीसियों को उसकी शिक्षा से बड़ी नाराज़गी हुई थी। जवाब में यीशु और भी कठोर हो गया। कई

बार झूठी शिक्षा देने वालों से बाहर निकलना सही होता है। उदाहरण के लिए मत्ती 15:13, 14 में यीशु ने अपने चेलों को ''उनको जाने'' देने की सलाह दी। क्यों? क्योंकि वे एक आत्मिक स्तर पर वे ''अंधे मार्गदर्शक'' थे। चेलों को फरीसियों की शिक्षा से चौकस रहना आवश्यक था; परन्तु उन्हें उससे डरने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि जल्द ही लोगों पर उनका अधिकार नहीं रहना था। यीशु ने कहा, ''हर पौधा जो मेरे स्वर्गीय पिता ने नहीं लगाया, उखाड़ा जाएगा।'' वह जानता था कि फरीसियों की झूठी शिक्षा और कपट उनके अपने नाश का कारण बनेंगे। परन्तु जैसे मरकुस 7:18 में यीशु ने किया, कड़े संदेश के साथ झूठी शिक्षा देने वालों का सामना करने का एक समय है।

''फरीसियों और सदूकियों के खमीर से सावधान'' रहने की ताड़ना देने के बाद (मत्ती 16:6), यीशु ने स्पष्ट किया कि वह क्या कह रहा था। ''तब उनकी समझ में आया कि उसने रोटी के खमीर से नहीं, पर फरीसियों और सदूकियों की शिक्षा से सावधान रहने को कहा था'' (मत्ती 16:11, 12)। ''फरीसियों का खमीर'' यह हो सकता है कि ''न्यायसंगत रूप में उन्हें अपने आप में इतना यकीन [होगा] कि वे परमेश्वर की इच्छा को पूरा करने को तैयार नहीं थे। यह निरा कपट है।''[43]

''**क्या तुम भी ऐसे नासमझ हो? क्या तुम नहीं समझते कि जो वस्तु बाहर से मनुष्य के भीतर जाती है, वह उसे अशुद्ध नहीं कर सकती? क्योंकि वह उसके मन में नहीं, परन्तु पेट में जाती है और संडास में निकल जाती है?**'' इस संदर्भ में कही जा रही यीशु की बात में मरकुस ने यह व्याख्या जोड़ दी: **(यह कहकर उसने सब भोजन वस्तुओं को शुद्ध ठहराया।)** समय के इस क्षण पर यीशु ने यह नहीं कहा कि सारे भोजन शुद्ध हैं; परन्तु पतरस के लिए एक अन्यजाति व्यक्ति कुरनेलियुस के घर में सुसमाचार सुनाने के लिए जाने से पहले, वह प्रेरितों 10:9-16 के उसके दर्शन में उसे यह बात समझाने के लिए रास्ता तैयार करना आरम्भ कर रहा था। पहली बार यह शिक्षा दिए जाने पर प्रेरितों की समझ में यह पूरी तरह से नहीं आई थी।

प्रेरितों 10:13-15 से हमें पता चलता है कि पुराने नियम के समयों में ''अशुद्ध'' भोजनों के खाने की पाबंदी कलीसिया के लोगों पर थोपी नहीं जानी थी। पतरस ने अपने ऊपर या अन्यजातियों में से परिवर्तित होने वालों पर व्यवस्था नहीं थोपनी थी। प्रेरितों के काम की घटनाएं यह सिखाने से आगे बढ़ गईं कि सारे भोजन शुद्ध हैं (शुद्ध करते हुए); परमेश्वर यह मान रहा था कि अन्यजातियों का राज्य में स्वागत है (प्रेरितों 11:18), चाहे यह सच्चाई अभी अधिकतर मसीही यहूदियों की समझ में नहीं आई थी।

पुरानी वाचा की जगह नई वाचा के आ जाने पर लोगों, विशेषकर अन्यजातियों पर परमेश्वर की मांगें ज़बदर्स्त ढंग से बदल गई। पतरस की समझ में यह सबक तिहरे दर्शन के द्वारा आना था (प्रेरितों 10; 11)। यह नियम बताए जाने के काफ़ी बाद तक उसने कोशर घर में रखा होगा (प्रेरितों 10:14)। किसी के लिए ऐसा करने में तब तक कोई बुराई नहीं थी जब तक वह इसे अन्यजातियों पर थोपता न हो, जिन्हें कभी व्यवस्था नहीं दी गई या जिन्हें वे अन्यजाति कहकर तुच्छ मानते थे।

''सारे भोजन शुद्ध [हैं]'' कथन की सही समझ रोम के मसीहियों के लिए, जिनके पूर्वज यहूदी थे, सहायक रही होगी। रोम के बहुत से भाइयों को जिन्हें यहूदी रीति रिवाज़ों की इतनी

जानकारी नहीं थी, यह तथ्य भी जानना आवश्यक था।[44] यह सच्चाई न केवल फरीसियों के परम्परागत नियमों के विरुद्ध थी बल्कि मूसा के उन सभी नियमों के भी विरुद्ध लगी, जिनके आधार पर उनका मानना था कि उनके साफ़ सफ़ाई के नियम बने थे। यह दिखाते हुए कि परमेश्वर का असल इरादा मन को शुद्ध करना था न कि केवल रस्मी तौर पर देह को शुद्ध करना, यीशु ''व्यवस्था को पूरा कर रहा'' था (मत्ती 5:17-19)।

मत्ती 5:17, 18 में यीशु ने अपनी बात ''मैं लोप करने नहीं परन्तु पूरा करने आया हूं'' को इस प्रकार से स्पष्ट किया। पूरा हो जाने के बाद कठोर नियम, व्यवस्था को हटा दिया गया। प्रेम की आत्मा प्रभु के सेवक के रूप में जीना आसान बना देती है। धार्मिकता में शास्त्रियों और फरीसियों से बढ़ने की मसीह की शिक्षा (मत्ती 5:20) का अर्थ आवश्यक नहीं कि उससे बढ़कर करना हो, बल्कि पवित्र शास्त्र की शिक्षा के आधार पर जो हम अपने मनों में विश्वास करते हैं उसे सच्चे मन से करना है ताकि हमारे प्रतिदिन के जीवन में हमारे विवेक हर सही ढंग से जवाब दे। फिर हम केवल बाहरी तौर पर सही नहीं होंगे।

मसीह की शिक्षा और जीवन ने पुरानी वाचा के नैतिक नियमों को नई गहराई दे दी। सब कुछ मन से जहां व्यवस्था लिखी हुई होनी चाहिए, करने की उसकी बड़ी शिक्षा, व्यवस्था के पूरा होने की ओर संकेत करती है (देखें यिर्म. 31:31-34; इब्रा. 8:8-12)।

कुछ लोगों का विश्वास है कि व्यवस्था का कथित ''औपचारिक'' भाग हटाया गया, परन्तु ''नैतिक'' शिक्षाओं का नहीं (जिसमें उनका दावा है कि सब्त का नियम आता है)। परन्तु बाइबल में किसी ''नैतिक'' नियम की बात नहीं की गई, जिसे पूरा करके हटाया न गया हो। इन वचनों में जहां मसीही लोगों के सम्बन्ध में मूसा की व्यवस्था के पूरा होने और खत्म होने की बात की गई है दो भागों वाली (नैतिक और औपचारिक) व्यवस्था का कोई नियम नहीं मिलता।

इब्रानियों की पुस्तक ''नैतिक'' और ''औपचारिक'' आज्ञाओं में ऐसा अंतर किए बिना व्यवस्था के अंत की घोषणा करती है (7:12-14, 18, 19; 8:13)। यही विचार 2 कुरिन्थियों 3:4-6 में मिलता है। पुराने नियम की यह शिक्षा उसकी तैयारी में थी जो नई वाचा में होना था। इसलिए क्रूस पर व्यवस्था अपने आप खत्म हो गई (इफि. 2:14-16; कुलु. 2:14)। पौलुस ने कुरिन्थियों को बताया कि नई वाचा का तेज इतना अधिक था कि इसने पुरानी वाचा के तेज को शून्य कर दिया (देखें 2 कुरि. 3:10)।

वह व्यवस्था जिसके लिए रोमियों 7:1-7 में पौलुस ने कहा कि हम ''मरे हुए'' हैं, उसमें ''लालच मत कर'' की आज्ञा थी। लालच करने को निश्चित रूप में ''नैतिक नियम'' में गलत ठहराया गया। स्पष्टतया पौलुस के कहने का अर्थ यह नहीं था कि नए नियम में लालच सही है। उसके कहने का अर्थ केवल इतना था कि हम ''सिद्ध कामों'' की व्यवस्था के नहीं बल्कि उस वाचा के अधीन हैं जो यीशु की सबसे बड़ी आज्ञा पर जोर देती है कि ''तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन से प्रेम रख।'' यीशु ने कहा कि आज्ञाओं में अगली आज्ञा ''अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम'' रखना है (मत्ती 22:37-40)। यदि कोई अपने पड़ोसी से सही प्रेम रखता है तो वह उसकी चीज़ें चुराएगा नहीं। व्यवस्था जिसमें आज्ञा थी कि ''लालच न करना'' (निर्गमन 20:17), उसी में यह भी कहा गया था, ''तू विश्राम दिन को पवित्र मानने के लिए स्मरण रखना'' (निर्गमन 20:8)। ये दोनों नियम उस व्यवस्था का भाग हैं जिसके लिए हम मसीही

लोग ''मरे'' हुए हैं।[45]

आयतें 20-22. फरीसियों को लगता था कि वे शुद्ध हैं क्योंकि वे अशुद्ध भोजन नहीं खाते थे, परन्तु यीशु दिखा रहा था कि **जो मनुष्य में से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है**। 7:21, 22 में बुराइयों की सूची में वे बातें बताई गई हैं जो **भीतर से** अशुद्ध करती हैं। उन कामों का वर्णन करते हुए जो व्यक्ति के अंदर से निकलते हैं न कि किसी भोजन को खाने से, पहली छह बुराइयां बहुवचन रूप में हैं। इन कामों को करने की लालसा **मनुष्य के मन से** निकलती है न कि पेट से।[46] इनमें से हर बात आत्मिक अशुद्धता का कारण बनती है न कि बाहरी अशुद्धता का।

बुरे बुरे विचार अंदर से निकलने वाले हर बाहरी कार्य के लिए, पाप का मूल हैं (देखें याकूब 1:13, 14)। यह सम्भव है कि ''बुरे बुरे [κακός, *kakos*] विचार'' मनुष्य की पूरी सोच के लिए कहा गया हो। यानी इस शब्द को ''छत्र शब्द जिसमें अगले सारे शब्द आते हैं'' जैसा माना जा सकता है।''[47]

व्यभिचार (πορνεία, *porneia*) एक पाप है जिसे ''सामान्य अर्थ में अवैध शारीरिक सम्भोग'' बताया जाता है।[48] *पोर्निया* शब्द व्यभिचार से व्यापक है क्योंकि इसमें हर प्रकार का शारीरिक पाप आ जाता है। विलियम बार्कले ने इसे ''शारीरिक बुराई में हर प्रकार का यातायात'' के रूप में देखा।[49] इसमें व्यभिचार, परस्त्रीगमन, समलैंगिकता, और पशुगमन सब आ जाते हैं। हर कोई इस बात से सहमत है कि विवाह से पूर्व सैक्स सहित, विवाह से बाहर का हर प्रकार के शारीरिक सम्भोग इस शब्द में समा जाता है।

चोरी (κλοπή, *klopē* से) यहूदा जैसे उचक्कों द्वारा की जाती है (यूहन्ना 12:6)। उठाईगिरी और काम से जी चुराना इसी श्रेणी में आता देखना चाहिए।

हत्या (φόνος, *phonos*) घृणा या विकृत प्रेम वाले मन से निकलती है; वरना ऐसे कामों को आत्मरक्षा या अप्रत्याशित हत्या माना जाता है। बैतलहम के बच्चों की हत्या जघन्य थी परन्तु यह गर्भपात से अजन्मे असंख्य बच्चों की हत्या से बढ़कर नहीं थी! लोगों की बहुसंख्या इसे हत्या माने या न, परन्तु यह परमेश्वर की नज़र में हत्या ही है।

परस्त्रीगमन (μοιχεία, *moicheia*) विवाहित हो या अविवाहित पुरुष के किसी विवाहित स्त्री के साथ शारीरिक सम्भोग को कहा गया है।[50] इसलिए उसके साथ शामिल स्त्री व्यभिचारणी है। तलाक के विरोध में नियम के लिए यह पाप उचित अपवाद था जैसा कि यीशु ने बताया (देखें मत्ती 5:32 और 19:9)। यह किसी भी दूसरे पाप से बढ़कर विवाह को तोड़ने का कारण बनता है!

लोभ (πλεονεξία, *pleonexia*) का सम्बन्ध लालच से **निकल**ने को कहा गया है। किसी चीज़ को पाने की लालसा जिसे पाने का हमें कोई नैतिक अधिकार न हो क्योंकि यह किसी दूसरे की है, लोभ है और आम तौर पर यह चोरी का कारण बनता है।

दुष्टता बुरे काम करने वालों के व्यवहार के लिए सामान्य संदर्भ है, जिन्हें ऐसी बुराइयां करना अच्छा लगता है जो त्रासदी बन जाती हैं। यह शब्द πονηρός (*ponēros*) से लिया गया πονηρία (*ponēria*) शब्द है, और इसका इस्तेमाल ''दुष्ट'' जो कि ''शैतान को दिया गया नाम है'' के लिए किया जाता है (यूहन्ना 17:15)। 2 थिस्सलुनीकियों 3:3 में इसी उपाधि

का इस्तेमाल हुआ है: "परन्तु प्रभु सच्चा है; वह तुम्हें दृढ़ता से स्थिर करेगा और उस दुष्ट से सुरक्षित रखेगा।" जो कोई पाप करता है उसे शैतान की संतान के रूप में *पोनेरे* के रूप में दिखाया जाता है (यूहन्ना 8:44)।

छल (δόλος, *dolos*) को चलाकी के रूप में दिखाया जा सकता है, जैसे कि मछुआरे या ट्रोय के लकड़ी के घोड़े (पारम्परिक यूनानी इतिहास में) द्वारा चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। किसी भी संदर्भ में हो, इसमें झूठ बोलना शामिल होता है।

लुचपन (ἀσέλγεια, *aselgeia*) बेलगाम वासना और कामुकता है, एक ऐसा स्वभाव जो हर प्रकार संयम को नापसंद है। इसका इस्तेमाल मर्यादा खो चुके व्यक्ति के लिए किया जाता है जो अधिकतर लोगों की तरह शर्म करने की परवाह नहीं करते। यह "बेहद बेशर्मी" है।[51] KJV में "हवस" है। LXX में इस शब्द का इस्तेमाल इज़ेबेल के लिए किया गया है जब उसने सामरिया नगर में बाल का एक भवन बनाकर उसमें बाल की वेदी बनाई (1 राजा. 16:32)। यह शब्द उन कई गतिविधियों को दिखाता है जो प्राचीन जगत में होती थीं और आज हमारे समय में भी पाई जाती हैं। बार्कले ने इसे "[नये नियम] की पापों की सूची में सबसे भद्दा शब्द" कहा।[52]

कुदृष्टि ὀφθαλμός (*ophthalmos*) शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ "बुरी नज़र" (KJV) है। इसी मूल शब्द से हमें आंखों के डॉक्टर के लिए "ओफलमोलोजिस्ट" शब्द मिला है; परन्तु "बुरी नज़र" मन की होती है। यह किसी दूसरे की खुशहाली पर ईर्ष्या या अप्रसन्नता वाले मन की बात हो सकती है। "कुदृष्टि" शब्द "लातीनी भाषा के *in-video* से लिया गया है जिसका अर्थ 'के विरुद्ध देखना,'" या बुरी इच्छा से दूसरों को देखना।[53] लाक्षणिक रूप में इसका अर्थ "बुरी नज़र" है जो दूसरों को बुरे इरादे से देखती है। कुदृष्टि के कारण असंख्य पाप हुए हैं (जैसे कैन द्वारा हाबिल की हत्या)।

निंदा βλασφημία (*blasphēmia*) से, ने मूल अर्थ "ब्लासफेमी" की जगह ले ली जो मनुष्य या परमेश्वर की बुराई करना है। इस शब्द का इस्तेमाल किसी व्यक्ति को श्राप देने के लिए हुआ लगता है, जो कि ब्लासफेमी (कुफ़र) हो सकता है। परन्तु पाप को आम तौर पर परमेश्वर के विरुद्ध बोलना ही माना जाता है (देखें 3:28, 29)। यह परमेश्वर के विरोध में कही गई किसी बात से या अपमानजनक शब्दों से उसकी महिमा को कम करके किया जाता है।

अभिमान (ὑπερηφανία, *huperēphania*) अहंकार है जो मूलतया "अपने आपको बड़ा दिखाना" या अपने को छोड़कर दूसरे सब लोगों की निंदा करना है "परमेश्वर अभिमानियों का विरोध करता है, पर दीनों पर अनुग्रह करता है" (याकूब 4:6; देखें नीति. 3:34)।

मूर्खता (ἀφροσύνη, *aphrosunē*) नैतिक मूढ़ता है। यह शब्द मानसिक योग्यता की कमी वाले की नहीं बल्कि समझदारी का इस्तेमाल करने से इनकार करने वाले की बात करता है।

निर्लज पापों की यह सूची हमें शर्मसार करके कम्पकपी लगा देती है। पौलुस ने बाद में 1 कुरिन्थियों 6:9, 10 और गलातियों 5:19–21 में बुराई की अपनी सूचियों में बड़ी नज़दीकी से पापों की मसीह वाली सूची दी।

आयत 23. यीशु ने यह कहते हुए समाप्त किया, "**ये सब बुरी बातें भीतर ही से निकलती**

हैं और मनुष्य को अशुद्ध करती हैं।'' यदि किसी का मन भ्रष्ट है, तो हो सकता है कि उसका प्रलोभन बाहर से पता चल जाए; परन्तु वास्तविक कमज़ोरी भीतरी है। हर व्यक्ति इन बातों में से किसी को भी अपने मन में आने देने के लिए जिम्मेदार है। व्यक्ति के मन को उसकी अपनी कमज़ोरी ही दूषित करके अंत में नष्ट कर देती है।

पहली सदी के कुछ यहूदी मसीही व्यवस्था की कुछ रस्मों को मानते रहे, जैसे कई प्रकार से मन्दिर में आराधना करना। (उदाहण के लिए, प्रेरितों 3:1 में पतरस और यूहन्ना प्रार्थना करने के लिए मन्दिर में गए।) ऐसा प्रतीत होता है कि यहूदियों को जीतने के लिए पौलुस तब तक अधिकतर यहूदी रस्मों को मानता रहा जब तक उन रस्मों से सुसमाचार का टकराव नहीं हुआ (1 कुरि. 9:20)। स्पष्टतया वह यरूशलेम में होने पर मन्दिर में आराधना करता था (देखें प्रेरितों 22:17–24)। वह यहूदी भाइयों के आस पास केवल कोशर भोजन ही खाता था, परन्तु अन्यजातियों को ऐसा करने पर विवश नहीं करता था। (गला. 2:11–21 में पतरस के साथ पौलुस का झगड़ा देखें।) यीशु यह सच्चाई बता रहा था कि ''जो किसी के मन से निकलता है'' वही उसके ''चरित्र, दृष्टिकोण और जीवन पर नज़रीये को दिखाता है।''[54]

उत्तर की ओर जाना (7:24)[55]

[24]फिर वह वहाँ से उठकर सूर और सैदा के देशों में आया; और एक घर में गया और चाहता था कि कोई न जाने; परन्तु वह छिप न सका।

1:14–7:23 में दर्ज सेवकाई के व्यस्त समय के बाद, यीशु के लिए विश्राम करने और यहूदिया के कट्टरपंथियों द्वारा उसे मार डालने के प्रयासों के खतरे से बचने का समय आ गया है। अन्यजातियों के इलाके में रहने के दौरान चाहे यीशु को कुछ राहत मिल गई थी, परन्तु चंगाइयां करने के अवसर भी बहुत थे। इस यात्रा का एक और उद्देश्य इलाके के लोगों को प्रेरितों 8 में राज्य के फैलना आरम्भ होने के लिए तैयार करना हो सकता है।

आयत 24. फिर वह वहाँ से उठकर सूर और सैदा के देशों में आया। गलील की झील के पार, उत्तर का यह दौरा एकमात्र वह समय होगा जब यीशु प्रचार की अपनी सेवकाई में अपने देश से बाहर गया हो। सूर सैदा के दक्षिण में लगभग छबीस मील था और यरूशलेम के उत्तर पश्चिम में लगभग एक सौ मील, जो नासरत के उत्तर की ओर लगभग पचास मील बनता है। ''फीनीके'' नामक इलाका गलील का उत्तर पश्चिम था और भूमध्य सागर के साथ साथ लगभग 150 मील तक फैला था।

दाऊद और सुलैमान के समय में सूर संसार की प्रमुख बन्दरगाह थी। यहेजकेल 26 में सूर के पूर्णविनाश की पेशनगोई की गई थी और पहली सदी ईसवी में इस उपद्वीप का कोई अस्तित्व नहीं था। पहले इसे बेबीलोनियों ने जीता था, उसके बाद फारसियों ने और फिर सिकन्दर ने। 332 ई.पू. में उसने बांध बनाकर इस उपद्वीप को नष्ट कर दिया।

''सूर'' (Τύρος, *Turos*) का अर्थ है ''चट्टान।'' तारों का इस्तेमाल करते हुए जल यात्रा करना सबसे पहले सूर के नाविकों ने सीखा। तब तक जहाज़ी तट के पास पास रहते थे और अंदर तक नहीं जाते थे। भूमध्य सागर पर जिब्राल्टर के नाके तक, ब्रिटेन में जाने वाले

सबसे पहले लोग फीनीके के ही थे; और हो सकता है कि उन्होंने ही पूरे अफ्रीका को नापा हो।

सूरूफिनीकी महिला की बेटी चंगी हुई (7:24–30)[56]

[24]फिर वह वहाँ से उठकर सूर और सैदा के देशों में आया; और एक घर में गया और चाहता था कि कोई न जाने; परन्तु वह छिप न सका। [25]और तुरन्त एक स्त्री जिसकी छोटी बेटी में अशुद्ध आत्मा थी, उसकी चर्चा सुन कर आई, और उसके पाँवों पर गिरी। [26]यह यूनानी और सुरूफिनीकी जाति की थी। उसने उससे विनती की कि मेरी बेटी में से दुष्टात्मा निकाल दे। [27]उसने उससे कहा, ''पहले लड़कों को तृप्त होने दे, क्योंकि लड़कों की रोटी लेकर कुत्तों के आगे डालना उचित नहीं है।'' [28]उसने उसको उत्तर दिया, ''सच है प्रभु; तौभी कुत्ते भी तो मेज के नीचे बालकों की रोटी का चूर-चार खा लेते हैं।'' [29]उसने उससे कहा, ''इस बात के कारण चली जा; दुष्टात्मा तेरी बेटी में से निकल गई है।'' [30]उसने अपने घर आकर देखा कि लड़की खाट पर पड़ी है, और दुष्टात्मा निकल गई है।

आयत 24. यह दिखाने के बाद कि शुद्ध और अशुद्ध के अंतर जल्द ही मिट जाने वाले थे (7:1–23), यीशु इन लोगों के लिए अपने लगाव और परमेश्वर के प्रेम को दिखाने के लिए अन्यजाति देशों में गया (7:24)। इस दौरे से उसके लिए जो प्रेरितों के काम में होने वाला था, मंच तैयार होना था। वह वहां **गया** जो स्पष्टतया किसी अन्यजाति का **घर** था, यह साबित करते हुए कि उसने ''शुद्ध और अशुद्ध'' के मानक को नकार दिया था। यह बोर्डिंग हाऊस हो सकता है, परन्तु उस अन्यजाति देश में भी ऐसे बहुत से लोग होंगे जिन्होंने आनन्द से प्रभु के रहने के लिए स्थान उपलब्ध करवाया होगा। यीशु को ''बुरे'' लोगों के साथ मेल जोल रखने के कारण ''पापी'' कहा गया था; रूढ़ीवादी यहूदियों का यह मानना था कि अन्यजातियों को स्वीकार करके और उन्हें आशीष देकर वह विधर्म का दोषी था। यूहन्ना 9:24, 25 में कइयों ने उसे ''पापी'' कहा। शीघ्र ही उसने अपने आरोप लगाने वालों का सामना बहादुरी से करना था, पर अब उसे एकांत चाहिए था।

वह **चाहता था कि कोई न जाने** कि वह वहां है, **परन्तु वह छिप न सका**। असली सेलेब्रिटी छिप नहीं सकता, इस कारण यीशु जहां भी जाता उसकी ख्याति पहले वहां पहुंच जाती। फिर भी यीशु ने गलील की भीड़ से दूर रहने का सोचा समझा प्रयास किया। उसे लोगों की भीड़ में मिली जुली प्रतिक्रिया मिलती होगी। उसे केवल यहूदियों के पास भेजा गया था, परन्तु अन्यजाति भी चाहते थे कि यीशु उनके साथ हो। स्पष्टतया यीशु इलाके में खुलेआम उपदेश नहीं देता था। परन्तु परमेश्वर ने उसे इलाके में बाद में और मनपरिवर्तनों की बड़ी तैयारी के लिए उसे अपनी सामर्थ दिखाने का एक मौका दिया।

आयतें 25, 26. एक मां **जिसकी छोटी बेटी में अशुद्ध आत्मा थी** बड़ी परेशानी में **आई और उसके पांव पर गिरी**। यह स्त्री अन्यजातियों के लिए यहूदियों में पाई जाने वाली घृणा के कारण रुकी नहीं। **उसने उससे विनती की कि मेरी बेटी में से दुष्टात्मा निकाल दे।** यीशु को ''दाऊद की संतान'' कहते हुए इस स्त्री ने उसे मसीहा के रूप में पहचाना (मत्ती 15:22)। वह यीशु से सहायता की भीख इस प्रकार से मांगती रही जिससे हंगामा हो गया होगा, और उसके

आस पास खामोशी नहीं हो रही होगी।

दिलेरी भरी उसकी विनती पर यीशु ने पहले तो एक शब्द नहीं कहा, लगा कि वह उसके साथ वैसे व्यवहार कर रहा है जैसे उसे किसी यहूदी द्वारा किए जाने की उम्मीद होगी। यह केवल इनकार दिखाई दिया, क्योंकि अंत में उसने उसकी इच्छा पूरी कर दी। जब यीशु ने उसकी बात नहीं मानी तो वह चेलों को परेशान करने लगी और उन्हें वह सिरदर्द लगी और उन्होंने यीशु से उसे भगा देने को कहा। हो सकता है कि चेले चाहते हों कि यीशु उससे पीछा छुड़ाने के लिए आश्चर्यकर्म कर दे। वे जानते थे कि उसने किसी और अन्यजाति सूबेदार के सेवक के लिए आश्चर्यकर्म किया था (मत्ती 8:5–13)। बहुत सम्भावना यह है कि वे उसे केवल इसलिए भगाना चाहते थे क्योंकि वह उन पर "चिल्लाती" थी (मत्ती 15:23)। उस स्त्री की विनती अकारण नहीं थी, परन्तु असामुयिक अवश्य थी क्योंकि अन्यजातियों के परमेश्वर की बड़ी आत्मिक आशिषों में शामिल किए जाने का समय अभी नहीं आया था।

यूनानी (Ἑλληνίς, *Hellēnis*) सिकन्दर के समय के बाद से गैरयहूदियों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला सामान्य नाम था। यूनानी प्रभाव संसार के अधिकतर भाग में फैल गया था। फीनीके के लोग कनानियों की संतान थे, और वह इलाका जहां वे रहते थे सीरिया का भाग था। यह स्त्री "सूर के इलाके" की थी (7:24), जिसे इस्राएलियों ने पूरी तरह से कभी वैसे नहीं जीता था जैसे यहोशू के समय में जीता था। उसे **सुरूफिनीकी जाति की** या "कनानी स्त्री" कहा गया है (मत्ती 15:22)।

आयत 27. यीशु के उत्तर से यहूदियों के इस विचार की झलक मिलती है कि इस स्त्री की राष्ट्रीयता उनकी राष्ट्रीयता से नीचे थी क्योंकि उसे "केवल इस्राएल के घराने की खोई हुई भेड़ों के पास ही भेजा गया" था (मत्ती 15:24)। वास्तव में सुसमाचार पहले यहूदियों को सुनाया जाना था (रोमियों 1:16)।[57] परन्तु यीशु ने यह कहते हुए कि "**पहले लड़कों को तृप्त होने दे**" थोड़ा सा दरवाजा खोल दिया। "लड़कों" (τέκνον, *teknon*) से उसका मतलब यहूदी था जिन्हें परमेश्वर की "संतान" माना जाता था।[58]

उस महिला के विश्वास को चुनौती देने के लिए यीशु ने **लड़कों की रोटी** और **कुत्तों** की अभिव्यक्तियों का इस्तेमाल करते हुए उसके रास्ते में और रुकावटें रख दीं। जिस "रोटी" (ἄρτος, *artos*) की यीशु ने बात की, वह यहूदी जाति के लिए तैयार की गई जीवन की रोटी थी। यह सच कि यीशु ने पालतू जानवर या पिल्ले के लिए शब्द (κυνάριον, *kunarion*) का इस्तेमाल किया, परन्तु उस स्त्री के मन में उसकी बातों का प्रहार कम नहीं हुआ होगा। वह उस स्त्री की विनम्रता और उसमें उसके विश्वास को परख रहा था। यह सोचना असम्भव है कि यीशु उसे नीचा दिखा रहा हो; बल्कि वह उसे अपने सामने विनम्रता दिखाने दे रहा था और अपनी सामर्थ में उसके विश्वास को दिखाने दे रहा था। यदि प्रभु उसकी बेटी को चंगा कर दे तो उसने अपने लिए "कुत्ता" कहलवाना स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया। अपनी बेटी के लिए उसके बड़े प्रेम ने हर चुनौती पार कर ली।[59]

यीशु को पता था कि इसी इलाके में एलिय्याह ने सारपत की विधवा के लिए क्या किया था (1 राजा. 17): परमेश्वर ने प्रबन्ध किया कि उसके घड़े का मैदा और उसकी कुप्पी का तेल भरा रहे और जितनी देर तक एलिय्याह वहां रहा, तब तक वह खाली नहीं हुआ। उस पर

एलिय्याह की सबसे बड़ी आशीष बाद में आई जब उसने उसके बेटे को मृत्यु से जिला दिया। यह कहानी चाहे यीशु के वहां आने से सदियों पहले हुई थी, परन्तु सूर और सैदा के लोगों के मनों में अभी भी ताज़ा थी। इस प्रसिद्ध कहानी से भी यह विश्वास करने में सहायता मिली होगी कि यीशु भी एलिय्याह की तरह अपने आपको परमेश्वर का सच्चा नबी साबित करते हुए, एक निर्धन अन्यजाति स्त्री की सहायता करेगा।

आयत 28. एक निराश मां ने चतुराई भरा उत्तर दिया। वह परमेश्वर की आशिषें पाने में यहूदियों का सम्मानित स्थान छीनने का प्रयास नहीं कर रही थी। वह समझदार थी परन्तु विनम्र थी और अपने आपको इस प्रकार से व्यक्त करने में उसका बड़ा विश्वास था। उसने संकेत दिया कि **बालकों की रोटी का चूर चार** ही काफ़ी होना था। उस ज़माने में धनवान लोग अपने हाथ रोटी के टुकड़ों से पोंछते थे, जिन्हें बाद में **मेज के नीचे** कुत्तों को डाल दिया जाता था।

आयत 29. स्त्री ने समझदारी, विनम्रता और विश्वास दिखाया था। यीशु ने उसके विश्वास को देखा और उसकी विनती स्वीकार कर ली। फिर उसने सबसे शानदार प्रशंसा की जिसे उसके बाद से कई बार दोहराया गया है। यीशु ने पुष्टि की, "**इस बात के कारण ... दुष्टात्मा तेरी बेटी में से निकल गई है।**" न्यू इग्लैंड के एक प्रचारक फिलिप्प ब्रुक्स ने अपनी मां की कब्र के पत्थर पर मत्ती 15:28 के ये शब्द लिखवाए: "हे स्त्री, तेरा विश्वास बड़ा है: तेरे साथ वैसा ही हो जैसा तू चाहती है" (KJV)।[60]

कितनी अजीब बात है कि प्रभु की दया पहले बिल्कुल भी दया नहीं लगी! यह भी अजीब है कि विश्वास की यीशु की सराहना उनके बजाय जिनसे उसे इसे मिलने की उम्मीद होनी चाहिए थी, अन्यजातियों के लिए अधिक थी (जैसे सूबेदार के साथ; देखें मत्ती 8:10)। शायद यह हैरानी की बात है कि अन्यजातियों का कोई विश्वास था भी।

आयत 30. यीशु द्वारा **लड़की** को चंगा कर दिए जाने के बाद, वह **खाट पर पड़ी** थी जो इस बात का संकेत है कि **दुष्टात्मा निकल** जाने पर वह बुरी तरह से थकी हुई होगी।[61] हम कल्पना कर सकते हैं कि घर लौटकर अपनी छोटी बेटी को ठीक ठाक पाकर उस स्त्री को कितना अच्छा लगा होगा। उसे अपनी बेटी को मसीहा के बारे में बताते हुए, जिसने दूर से उसे चंगा कर दिया था, कितना आनन्द लिया होगा। उसका विश्वास भी मज़बूत हुआ होगा, चाहे अपनी बेटी की चंगाई से पहले यीशु और उसकी सामर्थ के बारे में, दूसरों से सुनने के आधार पर, उसका बड़ा विश्वास था।

बहरे और हकले आदमी की चंगाई (7:31–37)[62]

[31]फिर वह सूर और सैदा के देशों से निकलकर दिकापुलिस से होता हुआ गलील की झील पर पहुँचा। [32]तो लोगों ने एक बहिरे को जो हक्ला भी था, उसके पास लाकर उससे विनती की कि अपना हाथ उस पर रखे। [33]तब वह उसको भीड़ से अलग ले गया, और अपनी उंगलियाँ उसके कानों में डालीं, और थूककर उसकी जीभ को छुआ; [34]और स्वर्ग की ओर देखकर आह भरी, और उस से कहा, "इप्फत्तह!" अर्थात् "खुल जा"! [35]उसके कान खुल गए, और उस की जीभ की गाँठ भी खुल गई, और वह साफ साफ बोलने लगा।

[36]तब उसने उन्हें चिताया कि किसी से न कहना; परन्तु जितना उसने उन्हें चिताया उतना ही वे और प्रचार करने लगे। [37]वे बहुत ही आश्चर्य में होकर कहने लगे, ''उसने जो कुछ किया सब अच्छा किया है; वह बहिरों को सुनने की, और गूँगों को बोलने की शक्ति देता है।''

आयत 31. यीशु **सूर और सैदा के देशों से** चला गया। वहां से उसने **दिकापुलिस** की ओर वापसी, का आरम्भ किया जो कि दक्षिण पूर्व की ओर बड़ी धीमी यात्रा की होगी। यह वही स्थान था जहां उस व्यक्ति ने जो पहले दुष्टात्मा से ग्रस्त था, उसका प्रचार किया होगा (5:20)। दस नगरों का बहुत बड़ा इलाका था और यीशु अपना संदेश लेकर दूसरे इलाकों में जाने के लिए, उस इलाके के एक और भाग में से गया होगा। कइयों का अनुमान है कि इस पूरे सफर में आठ महीने का समय लग गया होगा। यीशु का अन्यजातियों के पास जाना सुसमाचार के इस विवरण के मरकुस के रोमी आरम्भिक पाठकों के लिए प्रोत्साहित करने वाला हुआ होगा। यदि मरकुस के पहले पाठक रोम में थे (जो कि सम्भव लगता है), तो उन्होंने फीनीके के लोगों के साथ प्रभु के दयालुता भरे व्यवहार को सराहा होगा। इन लोगों के कई पूर्वजों को सिकन्दर महान ने वहां बसाया था, और वर्तमान निवासी मुख्यतया यहां तक रोमी प्रभाव में थे, इनके नगरों के उपनाम ''रोम से दूर रोम'' रखे जाते थे।[63]

यीशु के अपने देश से बाहर जाने के कई सम्भव कारण बताए जा सकते हैं: पहला, उसे पता था कि यहूदी अगुवे उसे मार डालना चाहते हैं, और परमेश्वर की समय-सारिणी में अभी वह समय नहीं आया था। दूसरा, यीशु पहले इस्राएलियों के पास आया था, परन्तु उसे पता था कि सारे संसार में उसका संदेश उसकी मृत्यु और पुनरुत्थान के बाद जाने वाला है; सो इस दौरे पर उसने सुसमाचार को ग्रहण करने के लिए दूसरे इलाकों को तैयार किया। तीसरा, उसकी मानवीय कमज़ोरियां हमारी कमज़ोरियों की तरह ही थीं; यहूदी देश में किए जाने वाले काम से वह थकता और चूर-चूर होता था। वह लोगों की नज़र में नहीं आना चाहता था, परन्तु ऐसा होता नहीं था (7:24)।

यदि यहूदिया के यहूदी अगुवों ने इस जगह पर यीशु के काम के बारे में सुन लिया होता तो उन्होंने खुलकर अन्यजातियों की सहायता करने के लिए उससे परेशान हो जाना था। आखिर, वे कह सकते थे, ''हम परमेश्वर के लोग हैं, चुनी हुई इस्राएल जाति। यदि यह व्यक्ति वह मसीहा है जिसकी हम उम्मीद कर रहे हैं, तो यह केवल हमारे लिए है।'' अब केवल शारीरिक इस्राएल ने परमेश्वर की अकेली संतान नहीं रहना था। कलीसिया में जो शीघ्र ही स्थापित होने वाली थी यहूदियों और अन्यजातियों दोनों ने होना था और इसने ''परमेश्वर के [नये] इस्राएल'' के नाम से जाना जाना था (गला. 6:14-16)।

आयत 32. तो लोगों ने एक बहिरे को जो हक्ला भी था, उसके पास लाकर उससे विनती की कि अपना हाथ उस पर रखे। इस वचन में बताई गई बोलने की समस्या वाले आदमी को यीशु द्वारा चंगा करने की कहानी कहीं और नहीं बताई गई है। इस व्यक्ति की स्थिति वस्तुत: ''हक्लाने'' (YLT) की थी। यीशु से इस आश्चर्यकर्म का बड़ा दिखावा करने की उम्मीद की गई होगी, क्योंकि उस समय में और उसके सदियों बाद तक सुनना ठीक करने और बोलने के योग्य बना देने की बात कहीं सुनी नहीं गई थी।

यीशु ने आश्चर्यकर्म वैसे नहीं किए जैसे हमें उम्मीद हो सकती है। नामान कोढ़ी ने एलिशा द्वारा उसकी उम्मीद से चंगा न करने पर मूर्खतापूर्ण जवाब दिया (2 राजा. 5); उसे कीचड़ भरी यरदन नदी में डुबकी लगाने के बजाय किसी और अच्छी बात की उम्मीद थी। कुछ समय तक सीरिया की सेना के बड़े सेनापति के रूप में सेवा करने के बाद, वह ऐसा आडम्बर देखने का आदी हो चुका था।

आयतें 33, 34. गड़बड़ से बचने के लिए यीशु **उसे भीड़ से अलग ले गया**, क्योंकि अपने आस-पास आवाज़ों का शोर अचानक सुनकर वह सदमे में आ सकता था। यीशु ने उसे उसके लिए जो होने वाला था, तैयार करने के लिए प्रारम्भिक सांकेतिक भाषा का इस्तेमाल किया।[64] उसने **अपनी उंगलियाँ उसके कानों में डालीं, और थूककर उसकी जीभ को छुआ**। उस आदमी को यह दिखाने के लिए कि उसकी जीभ को विकलांगता से छुड़ाने में क्या होने वाला था, उसने उसकी जीभ को छुआ। नये नियम के समयों में, थूक में निरोग करने वाली शक्ति माना जाता था।[65] उस बहरे को इसका पता होगा और शायद उसको इससे प्रोत्साहन मिला, क योंकि इससे यह संकेत मिला कि यीशु उसे चंगा करेगा। यदि कोई उसके वस्त्र को छूकर चंगा हो सकता था तो उसके थूक में भी वैसी ही सामर्थ होगी।

यह दिखाने के लिए कि यह चंगाई परमेश्वर की ओर से थी, यीशु ने **स्वर्ग की ओर देखकर आह भरी**। ऊपर की ओर देखकर और आह भरकर उसने यह संकेत दिया कि उसकी विनती, सहायता के लिए परमेश्वर के सामने गम्भीर पुकार है। यीशु को पता था कि उस बहरे आदमी को चेहरे के हाव भाव से बहुत कुछ समझ में आ सकता है।

अनुवाद हुआ शब्द ''आह'' (στενάζω, *stenazō*) वही शब्द है जो रोमियों 8:23, 26 में ''कराहना'' और ''आहें भरना'' के लिए है। पवित्र आत्मा ''आहें भरने'' के साथ हमारी सहायता करता है, शायद हमारी विनतियों को स्वर्गीय भाषा में बदलकर। क्या मनुष्य के रूप में पृथ्वी पर रहने के समय यीशु की प्रार्थना सीमित थी? उसकी ''आह'' से इस सम्भावना का संकेत मिल सकता है। प्रार्थना करने पर आत्मा के ''आहें भरने'' की सहायता उसे भी वैसे ही चाहिए हो सकती है, जैसे हमें चाहिए होती है। हमारे प्रभु ने प्रार्थना में हमारे बोझ अपने ऊपर ले लिए।

फिर यीशु ने अरामी भाषा में एक शब्द बोला, ''**इप्फत्तह!**'' अरामी भाषा यीशु की मातृ भाषा थी और इस आदमी की भी होगी, जिसने जल्द ही साफ़-साफ़ बोलने लग पड़ना था। यह वचन यह बताता है कि ''इप्फत्तह'' का अर्थ है ''**खुल जा।**''

आयत 35. जैसे ही यह शब्द बोला गया, **उसके कान खुल गए, और उस की जीभ की गाँठ भी खुल गई।** अब वह **साफ़ साफ़** बोल सकता था जो कि दोहरे चमत्कार को दिखाता है। यदि उसने पहले कभी बोल सुना न हो तो वह बोल नहीं सकता था। ऐसी कमी धीमे धीमे सीखने की प्रक्रिया आवश्यक होनी थी। सारी ''सृष्टि ने सृष्टिकर्त्ता की आज्ञा को सुना और यह आदमी चंगा हो गया।''[66]

आयत 36. यीशु ने देखने वालों को आज्ञा दी कि इस आश्चर्यकर्म के बारे में **किसी से न कहना** (देखें 5:43)। मनुष्य का स्वभाव तो ऐसा ही है, **जितना उसने उन्हें चिताया उतना ही वे और प्रचार करने लगे**। उन्होंने देखा कि मसीह द्वारा एक आश्चर्यकर्म हुआ है। जैसा कि

कई बार सुझाव दिया जाता है, यह इस बात को साबित नहीं करता कि यीशु ने जब लोगों को उन आश्चर्यकर्मों के बारे में जो उन्होंने देखे थे या जो उनके साथ हुए थे, लोगों को बताने से मना किया तो उसके दिमाग में ऐसा था। इसके विपरीत इन लोगों ने उसके राज्य की प्रकृति को गलत समझा और वे यह बताने को तैयार नहीं थे कि इस आश्चर्यकर्म का क्या अर्थ है। जब तक उनके दिमाग में उसका मिशन स्पष्ट नहीं था, तब तक वे ''ग्रेट कमीशन'' को पूरा करने के लिए तैयार नहीं थे।

इसके अलावा, यीशु नहीं चाहता था कि लोग उसे केवल चमत्कार करने वाले के रूप में जाने। वह अपने संदेश की ओर इससे भी बड़ा ध्यान दिलाना चाहता था, जो कि अनावश्यक उत्तेजना से छिप जाना था। जल्द ही उसने संसार के उद्धारकर्त्ता के रूप में जाने जाना था। तब, चंगाई का उसका कौशल पृष्ठभूमि में चला जाना था। उसके स्वर्ग में लौट जाने पर, आत्मा की चमत्कारी योग्यताएं प्रेरितों को उनके जीवन भर के लिए दी जानी थीं (और उनके जीवन भर के लिए जिन पर उन्होंने ''हाथ रखकर'' यह दान आगे देना था; प्रेरितों 8:18)। धीरे-धीरे करके आश्चर्यकर्म होने समाप्त हो जाने थे और फिर लोगों को उनके बारे में वचन के द्वारा पता चलना था, जैसे हमें चलता है (देखें यूहन्ना 20:30, 31)। यीशु के आश्चर्यकर्मों ने यह साबित किया कि वह कौन है; और उसके सबसे बड़े आश्चर्यकर्म यानी उसके पुनरुत्थान ने इसकी पुष्टि की।

आयत 37. इस इलाके के निकट पहले दुष्टात्माओं को निकालने के बाद लोगों ने उससे चला जाने की विनती करके जवाब दिया था (5:1-20)। अब लोगों ने कहा, **''उसने जो कुछ किया सब अच्छा किया है।''**[67] मरकुस 7 की घटनाएं यशायाह 35:5, 6 की भविष्यद्वाणी की याद दिलाती हैं:

> तब अन्धों की आंखें खोली जाएंगी और बहिरों के कान भी खोले जाएंगे; तब लंगड़ा हरिण की सी चौकड़ियां भरेगा और गूंगे अपनी जीभ से जयजयकार करेंगे। ...

लोग यीशु के कामों से **बहुत ही आश्चर्य में** थे। चाहे यह इलाका अन्यजातियों का था, परन्तु यीशु के यहां जाने से पहले, लोग इस्राएल के परमेश्वर की महिमा कर रहे थे (देखें मत्ती 15:30, 31)।

प्रासंगिकता

परम्पराएं और आज्ञा न मानना (7:1-8)

यीशु गलील में रहा था क्योंकि यरूशलेम में उसका विरोध हुआ था जिसका सामना वह इस समय अपनी सेवकाई में नहीं करना चाहता था। वह चाहता था कि वह खुलकर उपदेश दे सके। ऐसा लगा कि गलील के इलाके में उसे अच्छी जगह मिल गई जहां वह अपना उपदेश दे सकता था। परन्तु कुछ फरीसियों ने गलील में जाकर उसकी शिक्षाओं या कामों में कोई गलती निकालने की कोशिश करने का फैसला किया।

यीशु पर नज़र रखते हुए इन फरीसियों ने, उसके चेलों को मनुष्यों की बनाई उनकी परम्पराओं को तुच्छ समझते पकड़ लिया, उनके लिए यह बहुत ही गम्भीर मसला था। जिस

कारण उन्होंने यीशु की आलोचना की। यीशु के विरुद्ध उनका आरोप था कि ''उन्होंने उसके कुछ चेलों को अशुद्ध अर्थात् बिना धोए हाथों से रोटी खाते देखा'' था (7:2)। मरकुस 7:3, 4 उनकी शिकायत को थोड़ा विस्तार से बताता है:

> (क्योंकि फरीसी और सब यहूदी, पूर्वजों की परम्परा पर चलते हैं और जब तक भली भाँति हाथ नहीं धो लेते तब तक नहीं खाते; और बाज़ार से आकर, जब तक स्नान नहीं कर लेते, तब तक नहीं खाते; और बहुत सी अन्य बातें हैं, जो उनके पास मानने के लिये पहुँचाई गई हैं, जैसे कटोरों, और लोटों, और ताँबे के बरतनों को धोना-माँजना।)

फरीसियों का आरोप यह नहीं था कि प्रभु के चेलों ने उनका गंदे हाथों से खाया है, बल्कि यह था कि उन्होंने पूर्वजों की परम्पराओं में बताई गई, धोने की औपचारिक विधियों को नहीं माना था। इस चर्चा से दो प्रकार के धोनों का सम्बन्ध है। पहला, जो कि उनकी मुख्य चिंता थी, यहूदी परम्पराओं में ठहराया गया औपचारिक धोना था, जिसे कई बार खाने के साथ जोड़ा जाता था। दूसरा धोना, खाने से पहले साफ़ सफ़ाई के लिए था। पहला धोना भीतरी शुद्धता की बात था और दूसरा बाहरी शुद्धता की। फरीसियों ने केवल यहूदी परम्परा के अनुसार ठहराए गए औपचारिक शुद्ध किए जाने की बात की।

यीशु से पूछा उनका स्पष्ट प्रश्न यह था: ''तेरे चेले क्यों पूर्वजों की परम्पराओं पर नहीं चलते, और बिना धोए हाथों से रोटी खाते हैं?'' (7:5)। यीशु ने उनके प्रश्न को सुना, परन्तु इस पर कोई बात नहीं कि उसके चेलों ने यहूदी परम्पराओं को तोड़ा है कि नहीं। उसने उनके प्रश्न का उत्तर केवल यह ध्यान दिलाकर दिया कि उनकी मानवीय परम्पराएं आज्ञा न मानना बन चुकी थीं।

आइए उसकी व्याख्या को थोड़ा और ध्यान से देखते हैं। अपने आस-पास धार्मिक परम्पराओं में काम करने और परमेश्वर के वचन की निरोल आज्ञा को मानने की तलाश करने में उसका उत्तर हमारे लिए सहायक होगा।

1. यीशु ने कहा कि परम्पराएं जब *परमेश्वर के वचन की जगह ले लेती हैं* आज्ञा न मानने वाली बन जाती है। फरीसियों के उसके वास्तविक वचन थे ''क्योंकि तुम परमेश्वर की आज्ञा को टालकर मनुष्यों की रीतियों को मानते हो'' (7:8)। उसने आगे कहा, ''तुम अपनी परम्पराओं को मानने के लिये परमेश्वर की आज्ञा कैसी अच्छी तरह टाल देते हो!'' (7:9)।

यहूदी परम्पराएं परमेश्वर की आज्ञाएं नहीं थीं। वे परमेश्वर की आज्ञाओं से सम्बन्धित रब्बियों के बनाए नियम थे। जब यहूदी पूर्वजों ने अपनी परम्पराओं को परमेश्वर के वचन की जगह देना आरम्भ किया, तो वे आज्ञा तोड़ रहे थे, न कि उसे मान रहे थे।

उदाहरण के लिए, यदि हम यह निर्णय लें, ''यदि हम प्रभु-भोज को केवल क्रिसमस और ईस्टर के समय लें तो यह अच्छा रहेगा,'' तो हम प्रभु-भोज को सप्ताह के पहले दिन मनाए जाने को निकाल रहे होंगे। इस भोज को प्रत्येक रविवार की आराधना का भाग होना चाहिए जैसा कि आरम्भिक मसीहियों का नमूना देकर पवित्र आत्मा ने हम से इसे मनाने को कहा है। हम भोज को मनाने का परम्परागत ढंग न मानें। मनुष्यों की परम्पराओं को परमेश्वर के वचन की जगह नहीं दी जा सकती। जब ऐसा होता है तो हम आज्ञा मानने से आज्ञा तोड़ने वाले बनने लगते हैं।

2. यीशु ने यह भी संकेत दिया कि परम्पराएं जब *परमेश्वर के वचन के साथ टकराव*

करती हैं तो वे आज्ञा तोड़ना बन जाती हैं। कुछ परम्पराओं के कारण यहूदी लोग वह करने लग पड़े थे जो परमेश्वर की नज़र में गलत था क्योंकि वे उसके वचन के विपरीत थे। उदाहरण के लिए, जब यहूदियों की परम्परा के कारण किसी को अपना धन परमेश्वर को इस प्रकार से देना पड़े कि वह अपने बूढ़े माता-पिता की सहायता नहीं कर सकता हो, तो उस परम्परा का परमेश्वर की इच्छा से टकराव था। मूसा की व्यवस्था में हर यहूदी को अपने पिता और अपनी माता का आदर करने की आज्ञा थी (निर्गमन 20:12); और इसमें उनके मरने तक उनकी देखभाल करना शामिल था। यीशु ने यहूदियों को बताया, ''तुम अपनी परम्पराओं से, जिन्हें तुम ने ठहराया है, परमेश्वर का वचन टाल देते हो; और ऐसे ऐसे बहुत से काम करते हो'' (7:13)।

यदि हम ने लोगों से मसीह में बपतिस्मा लेने के लिए उनके सिरों पर पानी छिड़कने के द्वारा मसीह में बपतिस्मा लेने को कहें, चुने तो क्या यह परमेश्वर के स्वीकार्य होगा? नये नियम में मूल बपतिस्मा केवल एक तरीके से पानी में डुबकी के द्वारा है। नये नियम में कहीं पर भी बपतिस्मे के सम्बन्ध में पानी के छिड़काव की बात नहीं है। यदि हम ने मसीह में बपतिस्मे के रूप में सिर पर पानी छिड़कने की परम्परा आरम्भ कर दी, तो यह परमेश्वर के वचन के विरोध में परम्परा को स्थान देना होगा। ऐसी परम्परा हमें आज्ञा मानने से आज्ञा टालने की ओर ले जाएगी जो कि उसके वचन के साथ टकराव होगा।

3. यीशु ने कहा कि जब परम्पराएं *परमेश्वर के वचन को तुच्छ जानती या कम मानती हैं*, तो परम्पराएं आज्ञा मानने के बजाय आज्ञा तोड़ना बन जाती हैं। कई मामलों में रब्बियों की परम्पराओं को व्यवस्था से भी बढ़कर माना जाता था। यशायाह को उद्धृत करते हुए यीशु ने कहा, ''ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्यों की आज्ञाओं को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं'' (7:7)। यहूदी लोग आराधना करना चाह रहे थे, परन्तु उन्होंने ''मनुष्यों की आज्ञाओं'' को बुलंद कर दिया था और उन्हें परमेश्वर के वचन से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया था।

एक उदाहरण के रूप में आइए वाद्य संगीत पर विचार करते हैं। हमें संगीत की केवल तीन किस्मों का है, गाना, वाद्य संगीत और साज़ों के साथ गाना। नये नियम में आरम्भिक कलीसिया की सभाओं में इस्तेमाल किए जाने वाले संगीत के रूप में केवल गाने का वर्णन है। कलीसिया के इतिहासकार मानते हैं कि आरम्भिक कलीसिया आराधना सेवाओं में वाद्य संगीत का इस्तेमाल नहीं करती थीं। आराधना में वाद्य संगीत की किसी भी चर्चा का आरम्भ, इस प्रश्न के साथ होना आवश्यक है कि ''क्या आरम्भिक कलीसिया इसका इस्तेमाल करती थी?''

क्या हो यदि हम कहें, ''हम मानते हैं कि वाद्य संगीत केवल गाने से सुनने में अच्छा लगता है। हमें लगता है कि हमारी आराधना सेवाओं में इसका इस्तेमाल करना अच्छा होगा। हम उसे जो आरम्भिक कलीसिया पवित्र आत्मा की अगुआई से काम करती थी, निकाल देंगे, और हम अपनी आराधना सेवाओं में वाद्य संगीत का इस्तेमाल करेंगे''? ऐसा करना, उसे जो आरम्भिक कलीसिया की करती थी, और जो पवित्र आत्मा ने उन्हें करने की अगुआई दी, नीचा दिखाना होगा और यह हमारी अपनी परम्परा के पक्ष में परमेश्वर के वचन को छोटा करना होगा। यह प्रेरितों और आरम्भिक कलीसिया के दिखाए गए उदाहरण में परमेश्वर की कलीसिया को तुच्छ जानना होगा। यदि हमारी परम्पराएं परमेश्वर के वचन को कम मानती हैं, तो वे गलत हैं। वे हमें आज्ञा न मानने की ओर ले जाती हैं।

निष्कर्ष: 7:6 में यीशु ने शास्त्रियों और फरीसियों के साथ अपनी बातचीत में ''कपटियो'' शब्द का इस्तेमाल किया। उसने इस शब्द का इस्तेमाल किस अर्थ में किया? उसने फरीसियों को बाहर से वैसे दिखने वाले लोग बताया जो वास्तव में अंदर से पूरी तरह अलग थे। अपने मनों में वे परमेश्वर के वचन को नहीं, बल्कि अपनी परम्पराओं को मान रहे थे। बाहर से वे अपने आपको मज़बूत, वफ़ादारी से परमेश्वर के पीछे चलने वाले दिखाते थे। यीशु ने कहा, ''यशायाह ने तुम कपटियों के विषय में बहुत ठीक भविष्यद्वाणी की; जैसा लिखा है: 'ये लोग होठों से तो मेरा आदर करते हैं, पर उनका मन मुझ से दूर रहता है''' (7:6)। हमारे चारों ओर धर्म के कई फंदे हो सकते हैं, परन्तु यदि हमारे मन सचमुच में परमेश्वर की आज्ञा मानने के लिए समर्पित नहीं हैं तो वह हम पर दावा नहीं कर सकता।

परमेश्वर के वचन को प्रभावहीन करना (7:9–13)

यीशु के चेलों पर औपचारिक रूप में हाथ धोए बिना खाने का आरोप लग रहा था। संक्षेप में, शास्त्री और फरीसी कह रहे थे, ''तेरे चेले बड़ों की रीतियों को नहीं मानते, और यह तेरा दोष है क्योंकि वे तेरे चेले हैं'' (देखें 7:5)।

यीशु ने उस प्रश्न की बात नहीं की कि उसके चेले यहूदी परम्पराओं को तोड़ रहे थे या नहीं। उसने फरीसियों के अपने आज्ञा तोड़ने का सामना करते हुए, अपने चेलों और परम्पराओं की बात परोक्ष रूप से करनी थी। वह चर्चा को एक अलग स्तर पर ले गया।

जो कुछ फरीसी परमेश्वर के वचन के साथ कर रहे थे, उस पर सीधा निशाना लगाते हुए एक अर्थ में उसने कहा, ''तुम फरीसियों की ही बात कर लेते हैं और यह कि परमेश्वर की आज्ञाओं को न मानकर तुम किस प्रकार से उन्हें अपमानित कर रहे हो।'' पूर्वजों की परम्पराओं को सुझावों के रूप में देखा जाना चाहिए था कि परमेश्वर के वचन की आज्ञा कैसे मानें, परन्तु यह परम्पराएं इतनी ऊंची हो गई थीं कि उन्होंने परमेश्वर की आज्ञाओं की जगह ले ली थी। इस चर्चा में से निकला मुख्य विचार परमेश्वर की आज्ञाओं को मानने का था। क्या फरीसियों ने परम्पराओं को प्राथमिकता दे दी थी या उन्हें परमेश्वर के वचन के बराबर बना दिया था? इस प्रश्न का उत्तर सबसे महत्वपूर्ण था।

1. *उसकी स्पष्ट व्याख्या* देकर जो फरीसी कर रहे थे यीशु ने जवाब दिया। उसने उनके लिए यशायाह की भविष्यद्वाणी लागू की: ''ये लोग होठों से तो मेरा आदर करते हैं, पर उनका मन मुझ से दूर रहता है।'' (देखें 7:6; यशायाह 29:13)। उसने कहा, ''तुम परमेश्वर की आज्ञा को टालकर मनुष्यों की रीतियों को मानते हो'' (देखें 7:8)। यीशु उन्हें समझा रहा था कि वे अपनी परम्पराओं को इस हद तक दृढ़ता से मान रहे थे कि उन्होंने वास्तव में परमेश्वर के वचन को छोड़ दिया था। उसके निष्कर्ष से भयानक दोष लगाया गया: ''तुम अपनी परम्पराओं को मानने के लिये परमेश्वर की आज्ञा कैसी अच्छी तरह टाल देते हो!'' (7:9)। वे परमेश्वर के वचन के महत्व को कम करने के तरीके निकालने वाले कलाकार बन गए थे जिससे वे अपनी परम्पराओं को बढ़ावा दे सकें।

2. अपनी व्याख्या के बाद, यीशु ने जो कुछ कहा था उसे समझाने के लिए *एक ठोस उदाहरण दिया*। एक अर्थ में उसने कहा, ''मूसा की व्यवस्था की दो आज्ञाओं को देखो।'' पहली

आज्ञा जिसकी उसने बात की, वह दस आज्ञाओं में से पांचवीं आज्ञा थी कि ''अपने पिता और अपनी माता का आदर कर'' (निर्गमन 20:12)। दूसरी बात पांचवीं आज्ञा से सम्बन्धित एक नकारात्मक नियम था: ''जो कोई पिता वा माता को बुरा कहे, वह अवश्य मार डाला जाए।'' फरीसियों को पता था कि ये आज्ञाएं परमेश्वर का वचन हैं, परन्तु उन्होंने इनका क्या किया था? बुनियादी तौर पर यीशु ने कहा, ''मैं तुम्हें बताता हूं कि तुम ने उनका क्या किया है। तुमने उन्हें प्रभावहीन कर दिया है। तुमने उन्हें बेअसर कर दिया है।''

यहां पर, यीशु उनके सामने इन दो आज्ञाओं के अपने जवाब को पकड़कर परमेश्वर के वचन के उनके दुरुपयोग के बारे में और स्पष्ट हो गया। उसने कहा, '''परन्तु तुम कहते हो कि यदि कोई अपने पिता वा माता से कहे, ''जो कुछ तुझे मुझ से लाभ पहुँच सकता था, वह कुरबान अर्थात् संकल्प हो चुका''' [7:11], तो वह अपने बूढ़े पिता या अपनी माता की सहायता करने की अपनी जिम्मेदारी से छूट गया। वह उनकी कोई सहायता नहीं करता क्योंकि उसका दावा होता है कि उसने अपनी सारी सम्पत्ति परमेश्वर को दे दी है।'' इस उदाहरण का इस्तेमाल करते हुए, यीशु ने बहुत बड़ा दोष लगाते हुए फरीसियों को डांट लगाई। उसने कहा कि ये धार्मिक अगुवे ''अपनी परम्पराओं से, जिन्हें [उन्होंने] ठहराया [था], परमेश्वर का वचन टाल देते'' थे (7:13)। फिर उसने आगे कहा, ''और ऐसे ऐसे बहुत से काम करते'' हैं (7:13)।

''टाल देना'' का अर्थ ''अमान्य बनाना'' या ''प्रभावहीन करना'' है। दूसरे शब्दों में यीशु ने फरीसियों को यह समझाने के लिए कि उनकी परम्पराएं उनकी शिक्षाओं और उनके जीवनों में परमेश्वर के वचन को अमान्य बना रहीं या प्रभावहीन कर रही थीं, प्रभावशाली शब्दों से सामना किया। वे परमेश्वर के वचन को बेकार बना रहे थे। उन्होंने चतुराई से लोगों के मनों से पवित्र शास्त्र की सामर्थ और प्रभाव को निकाल दिया था। इन आज्ञाओं को मानने की अगुआई देने के बजाय उन्होंने सुविधाजनक लोगों के जीवनों में से निकालकर, उनकी जगह अपनी परम्पराएं डाल दी थीं।

''कुरबान'' क्या था? इसे परमेश्वर को दी जाने वाली भेंट माना जाता था। यहूदी परम्परा में बुनियादी तौर में कहा जाता था, ''जिस भी किसी ने अपनी सम्पत्ति परमेश्वर को दे दी है अब उसे अपने पिता और अपनी माता की उनके बुढ़ापे में उनकी आर्थिक सहायता करने की ज़िम्मेदारी खत्म हो गई।'' ऐसी परम्परा लोगों के मनों पर मानी जाने वाली आज्ञा के रूप में नहीं बल्कि यह प्रभावशाली ढंग से लोगों के मनों से उसे जो परमेश्वर की सेवा के लिए करना आवश्यक था, निकाल लेती थी।

3. जो कुछ यीशु ने इन फरीसियों से कहा, क्या हमें उसकी *उपयुक्त प्रासंगिकता* नहीं बनानी चाहिए? वास्तव में बनानी आवश्यक है। हमारे लिए उसी जाल में फंसना जिसमें ये यहूदी अगुवे फंसे थे, कितने दु:ख की बात होगी!

आज धार्मिक गुटों में अपने मानने वालों के लिए एक अलग याजकाई स्थापित करना सामान्य बात है। ऐसी याजकाई को लोगों से प्रभु तक एक पुल या मध्यस्थ का काम करने वाला माना जाता है। इसलिए परमेश्वर तक पहुंचने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए इस याजकाई के बीच में से जो ठहराई गई है, जाना आवश्यक है। यह स्पष्ट है कि अपने वचन में प्रभु ने यह योजना नहीं दी है। पतरस ने उन मसीहियों से जिन्हें उसने लिखा, कहा, ''तुम भी आप जीवते

पत्थरों के समान आत्मिक घर बनते जाते हो, जिससे याजकों का पवित्र समाज बनकर, ऐसे आत्मिक बलिदान चढ़ाओ, जो यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर को ग्राह्य हैं'' (1 पतरस 2:5)। पतरस ने कहा कि मसीही युग में कलीसिया की ईश्वरीय याजकाई ये मसीही लोग हैं। हर मसीही याजक है। इसलिए अलग से याजकाई का नाम देना उस याजकाई को प्रभावहीन करना होगा जिसे प्रभु ने चुना है, जिससे यह बेअसर या बेकार हो जाए। नये नियम की कलीसिया में हर मसीही परमेश्वर के याजक के रूप में रहता है। कोई भी परम्परा जो इस डिज़ाइन को बदलती है, वह परमेश्वर के वचन को प्रभावहीन कर देती या बिगाड़ देती है।

निष्कर्ष: यीशु हमें बचाने के लिए आया, न कि हमें दोषी ठहराने के लिए। उसने कहा, ''परमेश्वर ने अपने पुत्र को जगत में इसलिये नहीं भेजा कि जगत पर दण्ड की आज्ञा दे, परन्तु इसलिये कि जगत उसके द्वारा उद्धार पाए'' (यूहन्ना 3:17)। अपनी बातों से यीशु ने स्पष्ट कर दिया कि हमारे लिए उद्धार को कमाना असम्भव है। उद्धार केवल परमेश्वर के अनुग्रह और यीशु में विश्वास से मिलता है।

याद रखें कि असली विश्वास में धार्मिकता के काम आते हैं; यह परमेश्वर की इच्छा को मानता है। विश्वास परमेश्वर के वचन *से भागता* नहीं बल्कि इस *की ओर भागता* है। असली मसीही वह करने की खोज में रहता है जो परमेश्वर अपने वचन में उसे करने को कहता है; परन्तु वह उसे बचाने के लिए यीशु की मृत्यु के द्वारा दिखाए गए परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भर रहता है। वह जानता है कि वह सिद्ध नहीं है और इस जीवन में कभी सिद्ध नहीं होगा, परन्तु वह यह भी जानता है कि परमेश्वर के अनुग्रह और आज्ञाकारी विश्वास के द्वारा उसका उद्धार हो सकता है।

मसीही व्यक्ति के जीवन की रूपरेखा बाइबल के इन चार हवालों से दी जा सकती है:

> अत: जब हम विश्वास से धर्मी ठहरे, तो अपने प्रभु यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर के साथ मेल रखें। जिसके द्वारा विश्वास के कारण उस अनुग्रह तक जिसमें हम बने हैं, हमारी पहुंच भी हुई, और परमेश्वर की महिमा की आशा पर घमण्ड करें (रोमियों 5:1, 2)।
>
> क्या तुम नहीं जानते कि हम सब जिन्होंने मसीह यीशु का बपतिस्मा लिया, उसकी मृत्यु का बपतिस्मा लिया। अत: उस मृत्यु का बपतिस्मा पाने से हम उसके साथ गाड़े गए, ताकि जैसे मसीह पिता की महिमा के द्वारा मरे हुओं में से जिलाया गया, वैसे ही हम भी नए जीवन की सी चाल चलें (रोमियों 6:3, 4)।
>
> सो यदि कोई मसीह में है तो वह नई सृष्टि है: पुरानी बातें बीत गई हैं; देखो, वे सब नई हो गईं (2 कुरि. 5:17)।
>
> यदि हम कहें, कि उसके साथ हमारी सहभागिता है, और फिर अन्धकार में चलें, तो हम झूठे हैं और सत्य पर नहीं चलते; पर यदि जैसा वह ज्योति में है, वैसे ही हम भी ज्योति में चलें, तो एक-दूसरे से सहभागिता रखते है; और उसके पुत्र यीशु का लहू हमें सब पापों से शुद्ध करता है (1 यूहन्ना 1:6, 7)।

यह चारों हवाले: अनुग्रह, विश्वास, आज्ञा मानना और ज्योति में चलना चार बड़े विषयों को दर्शाते हैं। यह नया जीवन जो दिखाया जा रहा है परमेश्वर के वचन के ईमानदारी से, उदारता से,

और अनुग्रहपूर्वक आज्ञापालन से होता है। यह जीवन शैली उन परम्पराओं को जिनका परमेश्वर के वचन के साथ टकराव होता है या इसकी जगह पर आते हैं, कर्मकाण्ड और हर प्रकार के कपट को खारिज कर देती है।

इस जीवन में जो परमेश्वर ने हमें दिया है हम किसी भी चीज़ को हस्तक्षेप नहीं करने दे सकते, उन पुरानी से पुरानी परम्पराओं को भी नहीं, जो हमें बड़ी प्रिय हैं।

मन की बात (7:14-23)

यीशु के अनुसार, सही जीवन जीने की मुख्य बात मन की बात है। उसने कहा कि भोजन खाने के अर्थ में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि किसी के पेट में क्या जाता है बल्कि इससे फर्क अवश्य पड़ता है कि उसके मन से क्या-क्या विचार, शब्द और काम निकलते हैं।

यीशु शास्त्रियों और फरीसियों से बात कर रहा था। फिर उसने भीड़ को इकट्ठे बुला लिया और यह कहते हुए उनसे बात की, ''तुम सब मेरी सुनो और समझो'' (7:14)। परमेश्वर की सेवा करने और अच्छा जीवन अर्थात सही जीवन जीने के लिए जो कुछ उसने उन्हें कहना था, वह बड़ा महत्व वाला होना था। उसने एक ही वाक्य में अपनी बात कह दी: ''ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मनुष्य में बाहर से समाकर उसे अशुद्ध करे; परन्तु जो वस्तुएँ मनुष्य के भीतर से निकलती हैं, वे ही उसे अशुद्ध करती हैं'' (7:15)।

बाद में जब वह वहां गया जो कि बहुत सम्भव है कि पतरस का घर ही था, तब उसके चेलों ने उससे पूछा कि उसके कहने का क्या मतलब था। जैसा कि 7:17 में कहा गया है, वे जाना चाहते थे कि ''दृष्टांत'' से उसका क्या अभिप्राय था। यीशु ने उन्हें उत्तर देते हुए उनसे कहा:

> ''क्या तुम भी ऐसे नासमझ हो? क्या तुम नहीं समझते कि जो वस्तु बाहर से मनुष्य के भीतर जाती है, वह उसे अशुद्ध नहीं कर सकती? क्योंकि वह उसके मन में नहीं, परन्तु पेट में जाती है और संडास में निकल जाती है?'' (7:18, 19)।

यीशु की बातचीत एक आत्मिक उड़ान पर थी, परन्तु चेलों को इसके आत्मिक होने की समझ नहीं आई।

पहले तो, यीशु से उसके चेलों के उन यहूदी रस्मों को न मानने पर सवाल किया गया था जिनका शारीरिक या आत्मिक शुद्धता से कोई सम्बन्ध नहीं था। इन रस्मों से शरीर या मन शुद्ध नहीं होता था। ये मनुष्य की बनाई परम्पराएं थीं, जिनका कोई आत्मिक महत्व नहीं होता था।

स्पष्टतया बातचीत में यहां पर यीशु ने अपनी मुख्य बात कही: ''जो मनुष्य में से निकलता है, वही मनुष्य को अशुद्ध करता है'' (7:20)। यीशु ने उन्हें बताया कि मन उठने वाला वास्तव में अशुद्ध करने वाली चीज़ है।

मसीह के हर चेले को बड़े ध्यान से इस तथ्य को समझ लेना चाहिए कि जीने की सबसे बड़ी चिंता मन ही है। यह घोषणा करने पर कि यहां पर सबसे महत्वपूर्ण मन की बात ही है, यीशु के कहने का क्या अर्थ था?

1. *अपने मनों में हम अपने विचारों को आरम्भ करते और संगठित करते हैं।* परमेश्वर ने जब हमें अपने स्वरूप में बनाया, तो उसने हमें सोचने वाले जीव बनाया। उसने जैसे चाहो वैसे

सोचने की स्वतन्त्रता देकर हमें अपने मनों के मालिक भी बनाया। परन्तु उसने चेतावनी दी कि हम अपने विचारों की चौकसी रखें (नीति. 3:7, 8)। जब किसी का मन बुराई का मलकुण्ड बन जाता है अर्थात "बुरे बुरे विचार, व्यभिचार, चोरी, हत्या, परस्त्रीगमन, लोभ, दुष्टता, छल, लुचपन, कुदृष्टि, निन्दा, अभिमान, और मूर्खता" से भर जाता है (7:21, 22), तो स्पष्ट है कि उसका जीवन अशुद्ध हो गया है।

2. *अपने मनों में हम अपने निर्णयों को बनाते और अंतिम रूप देते हैं।* मन वह जगह है जहां निर्णय लिए जाते हैं। मन से हम अपनी वचनबद्धताएं तय करते हैं। इसी कारण यहोशू इस्राएलियों से कह पाया था, "आज चुन लो कि तुम किसकी सेवा करोगे ... परन्तु मैं तो अपने घराने में यहोवा ही की सेवा नित करूंगा" (यहोशू 24:15)।

मन केवल वह जगह नहीं है जहां हम निर्णय लेते हैं, बल्कि यह वह जगह भी है जहां हम अपने निर्णयों के लिए स्थिर रहते हैं। परमेश्वर की सेवा करने का निर्णय ले लेने के बाद हमें इसमें कायम रहना आवश्यक है। अलग-अलग प्रकार की भूमि के दृष्टांत में यीशु ने उन लोगों की बात कही जिन्होंने तुरन्त वचन को मान लिया, परन्तु वास्तव में वे थोड़ी देर तक रहे, क्योंकि उनकी वचनबद्धता ऊपर ऊपर की थी (मरकुस 4:16, 17)।

3. *अपने मनों में हम अपनी बातचीत पर विचार करते और उससे आगे बढ़ते हैं।* मन के कुएं में नीचे जो कुछ भी है वह बोलने की बालटी से बाहर आकर जीभ और होठों के द्वारा उण्डेल दिया जाएगा। अपने मन में हम उन विचारों और शब्दों को गढ़ते हैं जिन्हें हम दूसरों के साथ अपनी बातचीत में व्यक्त करते हैं।

एक अवसर पर यीशु ने फरीसियों से कहा, "हे सांप के बच्चो, तुम बुरे होकर कैसे अच्छी बातें कह सकते हो? क्योंकि जो मन में भरा है, वही मुंह पर आता है" (मत्ती 12:34)। उसने आगे कहा:

> भला मनुष्य मन के भले भण्डार से भली बातें निकालता है, और बुरा मनुष्य बुरे भण्डार से बुरी बातें निकालता है। और मै तुम से कहता हूं कि जो जो निकम्मी बातें मनुष्य कहेंगे, न्याय के दिन वे हर एक उस बात का लेखा देंगे। क्योंकि तू अपनी बातों के कारण निर्दोष, और अपनी बातों ही के कारण दोषी ठहराया जाएगा (मत्ती 12:35-37)।

4. *अपने मनों में हम अपने व्यवहार को चुनते और चलाते हैं।* हम अपने हाथों से फैलते हैं। हम अपनी जीभ से बोलते हैं। हम अपनी आंखों से देखते हैं। हमारे मन हमारे हाथों, जीभों, और आंखों को यह बताते हुए कि क्या करना है हमारे कामों को नियन्त्रित करते हैं।

अपने कामों में हम सही पहले केवल अपने मन में सही होकर और बनकर हो सकते हैं। जब कोई व्यक्ति सच्चा और आदरणीय हो, सही बात की खोज में हो, जो शुद्ध है उस पर मनन कर रहा हो, जो प्रिय है उस पर विचार कर रहा हो, जो अच्छा है उस पर टिका हो, जो बढ़िया है उसकी तलाश में हो, और जो प्रशंसा के योग्य हो उसकी खोज में हो, तो उसके काम उसके विचारों के साथ और उससे उसके मन का अच्छा चरित्र दिखाई देता है (देखें फिलि. 4:8, 9)।

निष्कर्ष: जीवन के मन पर विचार कर रहे हैं। हमारे शब्द, विचार, काम और वचनबद्धताएं हमारे मनों में से ही निकलती हैं।

नीतिवचन 4 अध्याय में जवान को समर्पित एक भाग है। उसका आरम्भ इस प्रकार होता है, ''हे मेरे पुत्रो, पिता की शिक्षा सुनो, और समझ प्राप्त करने में मन लगाओ'' (4:1)। फिर 4:23 में यह हदायत दी गई है, ''सब से अधिक अपने मन की रक्षा कर; क्योंकि जीवन का मूल स्रोत वही है।'' मूल में इस आयत की ठोस सलाह: ''मन,'' ''रक्षा कर,'' और ''सबसे अधिक'' तीन शब्दों में दी गई है। ''मन'' शब्द हमारे अस्तित्व का केन्द्र यानी हमारे जीवन का नियन्त्रण कक्ष है। ''रक्षा कर'' शब्द में इसका ध्यान रखने और इस पर नज़र रखने की बात है। ''सबसे अधिक'' शब्द बड़ी दक्षिता, संयम और जिम्मेदार से ध्यान रखने का सुझाव देता है। इस वाक्य में सबसे सामान्य निर्देश है जो जीवन जीने के लिए हमें कोई दे सकता है।

न्याय के दिन परमेश्वर हमारे मनों का न्याय करेगा; क्योंकि हमने अपने जीवन वास्तव में वहीं पर जीये हैं। किसी के कामों के पीछे उसका मन होता है जिसमें उसका विचार है कि कैसे जीना है। धर्मी मन को परमेश्वर की स्वीकृति होगी और दुष्ट मन को परमेश्वर का दण्ड मिलेगा।

मसीही बनना एक बात है, परन्तु यीशु द्वारा दी जाने वाली दैनिक जीवन जीने की योजना पर चलना दूसरी बात। मसीही बनना एक निर्णय है, परन्तु मसीह केन्द्रित जीवन उस निर्णय को दिन प्रतिदिन मानना है। मन इन दोनों में शामिल है। पहले वाला निर्णय मन का इस्तेमाल निर्णय लेने में करता है और दूसरे में व्यक्ति के शेष जीवन के लिए जीने की निरंतरता में मन ही होता है। मसीही मन के बिना, न तो मसीही है, न मसीही जीवन, और न मसीही आशा। भक्तिपूर्ण सोच के लिए जिसमें से भक्तिपूर्ण जीवन का सोता निकलता है, सोता मन ही है। जीवन में हो या अनन्तकाल सही मन के बिना कोई वास्तविक मूल्य नहीं।

विश्वास की तलाश (7:24-30)

यीशु कफ़रनहूम के आस पास के इलाके से निकलकर पलिश्तीन के पश्चिमी ओर चला गया। सैदा में से वह ''सूर के इलाके'' में आया (7:24)। झील की ओर मुड़कर वह उस इलाके की सीमा से पार जाकर इस अन्यजाति इलाके में प्रवेश किया। स्पष्टतया उसका इस जगह पर यह पहली बार आना था। यहूदिया और अन्य स्थानों पर होने वाले उसके विरोध के कारण उसे ऐसे शांत और स्वागत करने वाले इलाके में आना पड़ा।

पहुंचकर, वह एक घर में गया, स्पष्टतया खुलकर कुछ समय बिताने की योजना बनाते हुए। उसका इरादा प्रेरितों को और निर्देश देने के लिए उनके साथ एकांत में समय बिताने का था, इसलिए वह नहीं चाहता था कि किसी को पता चले कि वह वहां है। वह यहां पर प्रचार करने के लिए नहीं बल्कि समझाने के लिए आया था। परन्तु 7:24 कहता है कि ''वह छिप न सका।'' यीशु की प्रसिद्धि उससे पहले पहुंच गई थी। किसी प्रकार से यह खबर फैल गई थी कि वह इस गांव में आया हुआ है।

एक अन्यजाति स्त्री, जो किसी प्रकार से यीशु की विश्वासी बन गई थी, ने सुना कि वह गांव में है। वह सुरूफिनीकी जाति थी यानी कुछ कुछ सीरिया और कुछ कुछ फिनीकी थी। मत्ती 15:22 यह संकेत देते हुए कि वह उस इलाके के गैर यहूदी लोगों में से थी उसे ''कनानी स्त्री'' बताता है। उसकी एक बेटी थी जिसे किसी अशुद्ध आत्मा ने जकड़ा हुआ था और यह उसके लिए असहनीय हो गया था। वह अपनी बेटी को यीशु के पास ले जाने के अवसर की प्रतीक्षा में

था, या प्रार्थना भी करती होगी।

यह सुनकर कि यीशु उनके बीच में आया, यह स्त्री जितनी जल्दी हो सका, वहां चली गई जहां वह था। उसके पास पहुंचकर वह उसे पुकारने लगी और उसके चेलों से विनती करने लगी कि वे उससे मिलने दें। वह उत्तर में "न" नहीं सुनना चाहती थी। यह मानकर कि उसके कारण यीशु का नाम इस प्रकार बदनाम हो जाएगा जैसे वह नहीं चाहता था कि अभी हो चेले चाहते थे कि वह चली जाए। किसी प्रकार से वह चेलों के पास से निकलकर यीशु की ओर भाग गई। उसे दण्डवत करते हुए, वह उसके सामने गिर गई, और कहने लगी, "हे प्रभु, मेरी सहायता कर" (मत्ती 15:25)। मरकुस संकेत देता है कि वह बार-बार यही कहती जा रही थी, "हे प्रभु, मेरी बेटी की सहायता कर" (देखें मरकुस 7:26)। उसकी विनती विशेष, जोश से भरी, प्रभावशाली और सम्भवतया आंसुओं से भरी थी।

उसे जवाब देते हुए, यीशु ने कहा, "इस्राएल के घराने की खोई हुई भेड़ों को छोड़ मैं किसी के पास नहीं भेजा गया" (मत्ती 15:24)। परन्तु इस स्त्री को मना नहीं किया जाना था और वह विनती करती रही। इसलिए यीशु ने उससे कहा, "पहले लड़कों को तृप्त होने दे, क्योंकि लड़कों की रोटी लेकर कुत्तों के आगे डालना उचित नहीं है" (मरकुस 7:27)। उसकी बात में यह संकेत था कि समय आना था जब अन्यजातियों को अवसर मिलना था, परन्तु अभी वह समय नहीं आया था। इस स्त्री ने जिसके कानों में अभी भी उसके शब्द गूंज रहे थे, उत्तर दिया, "सच है प्रभु; तौभी कुत्ते भी तो मेज के नीचे बालकों की रोटी का चूर-चार खा लेते हैं" (7:28)।

यीशु का मन उसके दृढ़ विश्वास से बहुत पिघल गया। ऐसे विश्वास को देखकर उसने उससे कहा, "इस बात के कारण चली जा; दुष्टात्मा तेरी बेटी में से निकल गई है" (7:29)। सूर की इस घटना की मरकुस की यह अंतिम टिप्पणी है, "उसने अपने घर आकर देखा कि लड़की खाट पर पड़ी है, और दुष्टात्मा निकल गई है" (7:30)।

इस स्त्री के उदाहरण का हमारे लिए क्या अर्थ हो सकता है? यीशु के सामने बार-बार विनती करने से उसने एक अच्छी रूपरेखा दे दी कि जीवित परमेश्वर में विश्वास करने वाले को प्रार्थना करनी कैसे चाहिए।

1. इस स्त्री के सम्बन्ध में, हमें कहना पड़ेगा कि *उसने सच्चे दिल से प्रार्थना की*। जब उसने सुना कि यीशु पास ही कहीं है, तो वह "तुरन्त" ("सीधे"; ASV) यीशु के पास गई, दण्डवत करते हुए उसके सामने गिर गई, और अपनी बेटी के लिए याचना करने लगी (7:25)। हम नहीं जानते कि वह कितना चली थी। हम पढ़ते हैं कि यीशु को ढूंढ़ने के लिए "वह उन सीमाओं से आई" (मत्ती 15:22; ASV)। उसके लिए यीशु तक जाने का कोई भी सफर लम्बा नहीं होना था।

उसके सामने गिड़गिड़ाते हुए वह चिल्लाई, "हे प्रभु! दाऊद की सन्तान, मुझ पर दया कर! मेरी बेटी को दुष्टात्मा बहुत सता रहा है" (मत्ती 15:22)। यीशु से बात करते हुए उसने मसीहाई भाषा का इस्तेमाल किया। उसने मिन्नतें करती रही: "उसने उससे विनती की कि मेरी बेटी में से दुष्टात्मा निकाल दे" (मरकुस 7:26)।

प्रार्थना के सम्बन्ध में, मत्ती 7:7 हमें बताता है कि पहले हम "मांगें।" केवल इस पर विचार करना ही काफ़ी नहीं है। प्रार्थना मूल रूप में परमेश्वर से उसकी आशिषें "मांगना"

है। इसके लिए हमें समय निकाला, मांगने में ऊर्जा डालना और प्रार्थना यीशु के नाम में करना आवश्यक है।

2. हम इस बात से जिससे *वह दृढ़तापूर्वक मांगने में लगी रही* प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इस स्त्री ने हार नहीं मानी। जो उसे चाहिए था उसे पाने के लिए वह भावुक थी।

चेलों ने "उससे विनती की, 'इसे विदा कर, क्योंकि वह हमारे पीछे चिल्लाती हुई आ रही है'" (मत्ती 15:23)। प्रभु की उपस्थिति में रहने के लिए, इस परेशान मां को चेलों की रुकावट में से निकलना आवश्यक था।

उसे उसका भी सामना करना आवश्यक था जो यीशु के लिए भी संकोच वाला लगा। पहले तो उसने उसके साथ बात नहीं की। बाद में यीशु ने जवाब दिया, "इस्राएल के घराने की खोई हुई भेड़ों को छोड़ मैं किसी के पास नहीं भेजा गया" (मत्ती 15:23, 24)। परन्तु उसकी खामोशी और अपने मिशन के बारे में उसकी टिप्पणियों से उसकी विनतियां और बढ़ गईं। उसे पता था कि यीशु दयावान है और उसने विनतियां करते रहना ठाना हुआ था। किसी प्रकार उसे पता लग गया होगा कि यीशु चाहता है कि वह ऐसा करे।

फिर यीशु ने उससे कहा, "पहले लड़कों को तृप्त होने दे, क्योंकि लड़कों की रोटी लेकर कुत्तों के आगे डालना उचित नहीं है" (मरकुस 7:27)। स्पष्टतया इस स्त्री ने यीशु के उत्तर को "न" नहीं माना। शायद वह समझ गई कि अपने प्रेम और उदारता में वह उसके विश्वास को परख रहा है। उसका जवाब कोमल और नम्र था: "सच है प्रभु; तौभी कुत्ते भी तो मेज के नीचे बालकों की रोटी का चूर-चार खा लेते हैं" (7:28)। यीशु की तरह उसने कुत्ते के पिल्ले के लिए इस्तेमाल होने वाले शब्द का इस्तेमाल किया। उसके कहने का मतलब था कि मेज के पास सबसे बेकार कुत्तों को भी भूखे रहने नहीं दिया जाता था। उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, परन्तु अंत में उन्हें चूर-चार मिल जाते थे। उसने माना कि अन्यजाति होने के कारण इस समय यीशु के काम में उसका महत्व नहीं है। शायद वह इस बात को समझती थी कि अन्यजातियों को प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, परन्तु इसके साथ ही उसे उम्मीद थी कि उसकी बेटी की तरह कइयों को यीशु की सेवकाई के कुछ टुकड़ों से आशीष मिल जानी थी। कितना ज़बर्दस्त विश्वास था उसका!

3. हम इस तथ्य से प्रभावित होते हैं कि *वह भरोसा करती रही*। उसने विश्वास करना नहीं छोड़ा कि यीशु उसकी विनती को मान लेगा। उसे प्रोत्साहन नहीं दिया गया परन्तु उसने हार नहीं मानी। उसका विश्वास वही था जो दूसरों ने यीशु के बारे में उसे बताया था कि वह अनुग्रहकारी है, सब कुछ जानता है और प्रेम करने वाला है। विश्वास की अपनी आंखों से उसने उस सब के जो चेलों ने कहा और किया और यीशु की बातों से आगे देखा।

इस स्त्री ने असली विश्वास की सामान्य प्रतिक्रिया दिखाई। परिस्थितियां चाहे जैसे भी खराब क्यों न लग रही हों, सम्भावना चाहे कितनी भी कम क्यों न हो, विश्वास परमेश्वर की भलाई पर बना रहता है। इस स्त्री का यीशु की सामर्थ में, उसकी भलाई में और उसकी वफ़ादारी में विश्वास था। इन तीन बातों ने उसे स्थिर रखा। परिस्थितियों के बावजूद उसने विश्वास करना नहीं छोड़ा।

निष्कर्ष: इस स्त्री का उदाहरण प्रार्थना के हमारे संकल्प को चुनौती देता है। यह हमें प्रार्थना की तीन महत्वपूर्ण बातें बताता है: मांगना, लगे रहना और भरोसा रखना। क्या परमेश्वर हमारी

प्रार्थनाओं का उत्तर हमेशा हमारी उम्मीद के अनुसार देता है? इस प्रश्न का उत्तर ''नहीं'' ही होगा। यदि वह देता तो हमारे विश्वास को लगे रहने और भरोसा करने वाला होने की आवश्यकता नहीं होती। इस अन्यजाति स्त्री को मांगते रहना, लगे रहना और भरोसा रखना आवश्यक था जो कि हमारे लिए भी है।

हम परमेश्वर के तरीकों को हर बार समझ पाएं, ऐसा नहीं है। आइए हम इस बात पर आनन्दित हों कि उसने हम पर कुछ सच्चाइयां प्रगट कर दी हैं। परन्तु बहुत सी उसकी योजनाएं उसके मन में हैं; वे हमारे लिए उसके प्रकाशन का भाग नहीं है। यदि वह हम पर अपने कुछ उच्च ढंगों को प्रकट कर देता तो हमें वे समझ में नहीं आने थे।

आइए हम परमेश्वर और मसीह में भरोसा रखें। हम उस ईश्वरीय प्रकाशन में आनन्द करें जो उसने हमें दिया है। उसके प्रकाशन के हर उस भाग को जिसे हम समझ सकते हैं, समझने की कोशिश करें। अन्त में हम उन सुराखों को भरने में जो कई बार दिखाई देंगे, अपने उद्धारकर्त्ता पर भरोसा करके विश्वास और आज्ञा मानने के प्रकाश में चलें।

यीशु के व्यक्तित्व पर एक नज़र (7:31–37)

सूर के इलाके से निकलकर, यीशु सैदा में गलील की झील के उत्तरी सिरे की ओर गया और निचले इलाके दिकापुलिस में आया। गलील की झील के पूर्वी तट पर पहाड़ों के बीच कहीं, वह बैठ गया, शायद आराम करने और इस जगह पर अपनी सेवकाई के लिए बनाई गई अपनी योजनाओं पर विचार करने के लिए। यह तय कर पाना कठिन है कि यीशु इस इलाके में कितना समय रहा।

यीशु इस इलाके में पहले आया था (मरकुस 5:1–20)। यहां पर उसने अशुद्ध आत्माओं की सेना को निकाला और उन्हें दुष्टात्माओं को सूअरों में भगा दिया था। दुष्टात्मा से ग्रस्त आदमी को चंगाई देने के बाद यीशु ने उसे उस इलाके में लोगों को यह बताने के लिए वापस भेज दिया था कि यीशु ने उसे कैसे चंगा किया है। लगता है कि यह आदमी जिसे यीशु ने वापस भेजा था बहुत व्यस्त और प्रभावशाली था। स्पष्टतया उसके सुसमाचार सुनाने से वहां के लोग यीशु के आने के लिए तैयार हो गए थे। उन्होंने यीशु के प्रति अपना रवैया बदल लिया था, और कुछ तो किसी विशेष व्यक्ति को चंगाई दिलाने के लिए उसके पास लाने के अवसर की तलाश में थे। यह आदमी बहरा था और बिना हकलाए बोल नहीं सकता था; हम कह सकते हैं कि वह दोहरी परेशानी में था।

मरकुस ने उनके यीशु के पास जाने का वर्णन इस प्रकार से किया: ''लोगों ने एक बहिरे को जो हक्ला भी था, उसके पास लाकर उससे विनती की कि अपना हाथ उस पर रखे'' (7:32)। इन लोगों को यीशु के बारे में कुछ बताया गया था; और उन्हें यह विश्वास था कि यदि यीशु इस आदमी पर अपना हाथ रख दे तो वह चंगा हो जाएगा।

यीशु ने तुरन्त उनकी विनती मान ली। वह इस आदमी को भीड़ से दूर ले गया, ''तब वह उसको भीड़ से अलग ले गया, और अपनी उंगलियाँ उसके कानों में डालीं, और थूककर उसकी जीभ को छुआ; और स्वर्ग की ओर देखकर आह भरी, और उस से कहा, 'इप्फत्तह!' अर्थात् 'खुल जा!''' (7:33, 34)।

यह आश्चर्यकर्म स्पष्ट था और वहां उपस्थित सब लोगों को यकीन दिलाने वाला था। मरकुस 7:37 उनकी प्रतिक्रिया को दिखाता है: ''वे बहुत ही आश्चर्य में होकर कहने लगे, 'उसने जो कुछ किया सब अच्छा किया है; वह बहिरों को सुनने की, और गूँगों को बोलने की शक्ति देता है'!'' उनकी हैरानगी प्रशंसा और स्तुति में फूट पड़ी।

सुसमाचार के चारों विवरणों के कुछ चौंतीस आश्चर्यकर्मों में से केवल दो मरकुस में अद्वितीय हैं: इस आदमी के बहरेपन और हकलाने की चंगाई और 8:22-26 में अंधे की चंगाई। दोनों के अपने अपने अनोखे पहलू हैं। इस में इशारों में बात करने की बात हो सकती है और अध्याय 8 वाले अंधे की चंगाई चरणों में हुई।

हमें याद रखना होगा कि इस चंगाई में आकर्षण चंगा होने वाला आदमी नहीं बल्कि यीशु है। आश्चर्यकर्मों के ये विवरण यीशु को महिमा देने और कलीसिया को उसकी पहचान की स्पष्ट समझ देने के लिए लिखे गए थे। मरकुस में दर्ज हर घटना में हमें मसीहा के स्वभाव के गुणों से सम्बन्धित अर्थ की नये रंग मिलते हैं। 7:31-37 में बहरे और हकले आदमी की चंगाई का यह दृश्य हमें मसीह के ईश्वरीय स्वभाव की पूरी तस्वीर दिखाने में हमारी सहायता करने में अपना योगदान देता है। विशेषकर यह हमें मसीह के व्यक्तित्व को समझने में सहायता करता है।

1. विवरण के आरम्भ में, यीशु को *प्रेमी प्रभु* के रूप में दिखाया गया है *जो ईर्ष्या नहीं रखता*। यीशु जब पिछली बार दिकापुलिस के इलाके में आया था तो उसे वहां से जाना पड़ा था। लोगों ने उसे चले जाने को कहा था क्योंकि वे उससे डर गए थे या उन्होंने उसे अशुद्ध आत्माओं को सूअरों के झुण्ड में भेजकर नष्ट होने के लिए उसे भगा दिया, इसका कोई मतलब नहीं। उन्होंने उसे उनका इलाका छोड़ देने की विनती की। निश्चय ही चले जाने की इन विनतियों से यीशु को दु:ख हुआ। वह उनके इलाके में क्यों आया था? वह वास्तविक जीवन लेकर आया था। उसने पिता की ओर से उन्हें सच्चाई देने के लिए स्वर्ग से मिली अपनी सेवकाई के लिए समय निकाला था। ऐसी आशीष संसार के केवल कुछ स्थानों पर लोगों को मिली, परन्तु उन्होंने इसका क्या किया? उन्होंने यीशु को अपने इलाके से चले जाने को कहा। वे सुनना भी नहीं चाहते थे कि वह उन्हें क्या देने आया है।

जो कुछ उन्होंने यीशु के साथ किया उसके प्रति यीशु का क्या रवैया था? क्या उसने अपने मन में कहा, ''मैं फिर कभी इस खराब जगह पर नहीं जाऊंगा। उन्होंने उस स्वर्गीय दान को जो मैं उनके लिए लेकर आया हूं, 'न' कह दिया। मैं उन्हें उसी बदी में दे दूंगा जिसको उन्होंने चुना है''? नहीं। उसकी सेवकाई के इस भाग के दौरान जो कुछ हुआ, उसके बारे में चाहे हम अधिक नहीं जानते, परन्तु हम इतना जानते हैं कि वह दिकापुलिस में फिर से गया। हम यह भी जानते हैं कि उससे इस आदमी को चंगा करने की विनती की गई और उसने खुशी से वह आश्चर्यकर्म कर दिया जो करने की उसे विनती की गई थी।

2. वचन में जैसे जैसे आश्चर्यकर्म की बात आगे बढ़ती है यीशु को *कोमल मसीह* के रूप में दिखाया गया है, *जो लोगों की सेवा करने में कभी कठोर नहीं था*। यीशु ने इस आदमी के प्रति कैसे काम किया? यह आदमी उसे सुन नहीं सकता था। वह यीशु से स्पष्ट बात नहीं कर सकता था। यीशु ने उसके साथ कैसे व्यवहार किया?

वचन कहता है कि यीशु उस आदमी को भीड़ से दूर अकेले में ले गया। यह सोच विचार

और इस आदमी के भीड़ में परेशान होने की उसकी जानकारी को दिखाता है।

इसके अलावा यीशु ने उसके साथ निजी कोमलता दिखाई, शायद उसे यह समझाने के लिए कि उसने उसके लिए क्या योजना बनाई है। यीशु ने उस आदमी के कानों में अपनी उंगलियां डालीं, सम्भवतया उसे यह बताने के लिए कि वह उसके कानों को चंगा करने वाला है। वह उसे यह बता नहीं सकता था सो उसने अपनी उंगलियों से उसे दिखा दिया।

इसके अलावा यीशु ने उसे यह बताने के लिए कि वह उसकी जीभ को भी ठीक कर देगा उस आदमी की जीभ को हलके से छुआ। क्या यह हो सकता है कि यीशु ने *इफ़ता* बोलते हुए जो कि अरामी भाषा में "खुल जा" की आज्ञा है, उसकी जीभ पर अपने अंगूठे और उसके कानों में अपनी अगली उंगलियां रखी हों? चाहे वचन यह कहता है कि यीशु ने "थूका" परन्तु यह थूकने के बारे में कोई व्याख्या नहीं देता। 7:33 में NASB में "राल के साथ" शब्द जोड़े गए हैं; यह दिखाने के लिए कि ये शब्द मूल वचन में नहीं थे, इन्हें तिरछे रखा गया है। हम नहीं जानते कि यीशु ने थूक के साथ क्या किया। जो भी किया हो, यह दृश्य दयालुता का है, जैसा कि हमें बड़े वैद्य से उम्मीद होगी।

यीशु का व्यक्तित्व कैसा था? वह इस आदमी को जैसे उसने चंगा किया किसी और तरीके से भी चंगा कर सकता था। उसने ऐसा करना इसलिए चुना क्योंकि यह लोगों के प्रति कोमलता के उसके व्यक्तित्व से मेल खाता है। उसने कभी कुछ लापरवाही से नहीं किया। उसने हमेशा अपने तरीके को उस संदेश का भाग बनाया, जो वह परमेश्वर के स्वभाव के बारे में और इस बारे में कि वह कैसा उद्धारकर्त्ता था, लोगों को बताना चाह रहा था।

यीशु वह मसीह है जिसने छोटे बच्चों को गोद में लिया और उन्हें आशीष दी (मरकुस 10:16)। वह वह मसीह है जिसने अपना हाथ बारह वर्ष की मुर्दा लड़की के हाथ पर रखा और कहा, "हे लड़की, उठ" (लूका 8:54)। वह वह मसीह है जिस इस आदमी को प्रेम से एक ओर ले जाकर उसे छुआ, ताकि उसे समझ में आ सके कि उसके लिए क्या हो रहा है। हां, वह सर्वशक्तिमान मसीह है, परन्तु उसका एक मन भी है जो करुणा, दयालुता और कोमलता का प्रतीक है।

3. इस दृश्य में हम यह भी देखते हैं कि यीशु को *स्वर्ग से आया अलग व्यक्ति नहीं बल्कि सहानुभूति रखने वाला उद्धारकर्त्ता* दिखाया गया है। जब यीशु ने इस आदमी की चंगाई के बारे में प्रार्थना करने के लिए स्वर्ग की ओर ऊपर देखा, तो उसने "आह भरी" (मरकुस 7:34)। यूनानी भाषा में शब्द मज़बूत है जो केवल मरकुस में यहां इस्तेमाल हुआ है। इसका अनुवाद "चीखा" हो सकता है। यीशु इस आदमी की तरह दु:खी लोगों का विचार करके अपने मन की पीड़ा को व्यक्त कर रहा हो सकता है।

हम यीशु को इस आदमी "के साथ महसूस करने वाले" के रूप में सोच सकते हैं। यह तो ऐसा था जैसे यीशु ने उस आदमी के मन में जाकर उसकी पीड़ा, परेशानी और व्याकुलता को अपने ऊपर ले लिया। मनुष्य के सीने में धड़क रहा यीशु का सिद्ध दिल सबसे संवेदनशील, तरस करने वाला और संसार का सबसे कोमल मन था।

निष्कर्ष: यीशु मसीहा का व्यक्तित्व उस सबसे जिसकी हमारे मन कल्पना कर सकते हैं आकर्षक है। इस आश्चर्यकर्म की कहानी यीशु की सामर्थ की उतनी नहीं है (चाहे उसे साफ़

साफ़ दिखाया गया है) जितनी यह यीशु के व्यक्तित्व और उसके दिल की है। कौन होगा जो उसके दिन को देखकर उससे प्रभावित न हो सके ?

यीशु का व्यक्तित्व और उसकी सामर्थ दोनों साथ-साथ चलते हैं। जब हम उसके सिद्ध व्यक्तित्व को देखते हैं तो हमें कहना पड़ता है, ''यह कौन है ? ऐसा मन किसका हो सकता है ?'' फिर हमारे दिमाग हमारे उत्तर के लिए उसी सामर्थ की ओर मुड़ जाते हैं। उसकी सामर्थ कहती है, ''वह परमेश्वर की ओर से भेजे गए मसीह को छोड़ कोई और नहीं है।''

उल्टा भी सच है। जब हम उसकी सामर्थ को देखते हैं, तो हम यह पूछने को विवश हो जाते हैं, ''यह सर्वशक्तिमान कौन है जिसने तूफ़ान को रो दिया और मुर्दों को जिला दिया ?'' उसके चेहरे को देखते हुए हमें उत्तर देना पड़ेगा, ''यह प्रेम, अनुग्रह और तरस की वह अभिव्यक्ति है जिसे परमेश्वर ने संसार में भेजा है।''

यीशु की सामर्थ अकेली हमारा उद्धार नहीं कर सकती थी क्योंकि निरी सामर्थ ने उसे क्रूस तक नहीं ले जाना था। दयालुता, प्रेम और करुणा के उसके व्यक्तित्व ने सर्वशक्तिमान मसीह को चलाया और हमारे पापों के लिए प्रायश्चित का बलिदान होने के लिए क्रूस तक जाने को विवश किया (देखें यूहन्ना 10:11-18)।

टिप्पणियां

[1]व्यवस्था के उनके ज्ञान के कारण शास्त्रियों और फरीसियों में से कइयों को ''व्यवस्थापक'' भी कहा जाता था (देखें मत्ती 22:35; लूका 7:30; 10:25; 11:45; 14:3) और ''teachers of the law'' (''NASB में व्यवस्था के सिखाने वाले - अनुवादक'' लूका 5:17; प्रेरितों 5:34)। [2]वे जानते थे कि प्रभावित लोगों, पशुओं या वस्तुओं को छूने से कोढ़ और दूसरे लोग फैल सकते हैं; और वे लैव्यव्यवस्था 13 के अलग करने के नियमों को जानते थे। [3]यरूशलेम के किसी भी आकार के पहली सदी के घर, जिनकी खुदाई हुई है, उनमें तलाब या कुएं का प्रबन्ध हर में मिला। गलियों से बनने वालों नालों से पानी पहले तालाब में चला जाता, जो किसी दूसरे तालाब से पूरा होता था जिससे निवासियों को ''बहता पानी'' मिल सके जो ''अशुद्ध'' या गंदा न हो। ''शुद्ध'' जल उपलब्ध करवाने के लिए इसे आवश्यक माना जाता था। [4]रोनल्ड जे. कर्नाघन, *मरकुस,* द IVP न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्री सीरीज़ (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटरवर्सिटी प्रेस, 2007), 135. [5]इस बात में इतिहासकार जोसेफ़स सहमत हुआ कि फरीसियों को लोगों का समर्थन प्राप्त था। (जोसेफ़स *एंटीक्विटीज़* 13.10.6 [298].) यह बहस तो होती रहती है कि इन नियमों को मूसा की व्यवस्था के बराबर माना जाता था या नहीं, परन्तु यह स्पष्ट है कि उन्हें बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था। [6]फरीसियों के विवेकपूर्ण अंतरों के लिए, देखें विलियम बार्कले, द *गॉस्पल ऑफ़ मरकुस,* दूसरा संस्करण, द डेली स्टडी बाइबल (फिलाडेल्फिया: वैस्टमिंस्टर प्रेस, 1956), 168-69. [7]एल. ए. स्टॉफ़र, *मरकुस,* ट्रुथ कॉमैंट्रीज़, गार्डियन ऑफ़ ट्रुथ फ़ाउंडेशन (बॉलिंग ग्रीन, कैंटकी: स्टैंडर्ड पब्लिशिंग कं., 1999), 156. [8]डोनल्ड इंग्लिश, द *मैसेज ऑफ़ मरकुस: द मिस्टरी ऑफ़ फ़ेथ,* द बाइबल स्पीक्स टुडे (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटर-वर्सिटी प्रेस, 1992), 142. [9]द *ज़ौंडरवन पिक्टोरियल बाइबल डिक्शनरी,* सम्पा. मैरिल सी. टेनी (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: ज़ौंडरवन पब्लिशिंग हाउस, 1963), 647 में लॉर्मन एन. पीटरसन, ''फैरिसीस।'' [10]*मिशनाह* और *गेमारा* (कॉमैंट्री ऑन द *मिशनाह*) यहूदी ताल्मुड का भाग है। (''ताल्मुड,'' *बेकर्स कंसाइज़ डिक्शनरी ऑफ़ रिलिजन,* सम्पा. डोनल्ड टी. कॉफ़मैन [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1967], 407.)

[11]मिशनाह *अबोथ* 3.12. [12]ताल्मुड *एरुबिन* 21बी. [13]ताल्मुड *योमा* 77बी में शिब्ता का उल्लेख नवजात को खाना खिलाने से पहले दोनों हाथ धोने के कारण के रूप में किया गया है। [14]पीटरसन, 647. [15]एक समानांतर विवरण मत्ती 15:1-3, 7-9 में है। [16]बेशक विशिष्ट आज्ञा की पर नहीं पर सामान्य आज्ञा समझ का इस्तेमाल करने की गुंजायश रहती है। उदाहरण के लिए नूह को गोपेर की लकड़ी से जहाज़ बनाने को कहा गया था, और उसे

यह बताया गया था कि जहाज कितना लम्बा बनाना है, परन्तु यह नहीं बताया गया था कि उसमें तख्ते कितने लम्बे बनाने हैं।[17]KJV में इब्रानी शब्द חָנֵף (*chaneph*) का अनुवाद ''hypocrite'' (कपटी) हुआ है। नये नियम में यह देखना कठिन है कि इसका अर्थ हमारे ''hypocrite'' के आधुनिक विचार वाला ही है, परन्तु यीशु ने इसका इस्तेमाल किसी बुरे व्यक्ति के अर्थ में किया। अंग्रेज़ी भाषा में यह ऐसे व्यक्ति के लिए लागू होता है ''जो जानबूझकर और आदतन अच्छा बनता है जबकि उसे पता है कि वह अच्छा है नहीं'' (जे. डी. डग्लस, सम्पा, द *न्यू बाइबल डिक्शनरी* [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1975], 549) में एच. एल. इलिसन, ''हिपोक्राइट।'' विलियम बार्कले ने इस शब्द के विकास का वर्णन इस प्रकार से किया है: ''इसका आरम्भ केवल *उत्तर देने वाला* के अर्थ से होता है; इसका अर्थ किसी वार्तालाप या बातचीत में उत्तर देने वाले के लिए हो जाता है, यानी *कलाकार* के लिए और फिर अंत में इसका अर्थ, मंच पर केवल कलाकार नहीं बल्कि *उसके लिए हो जाता है जिसका पूरा जीवन इसके पीछे किसी भी गम्भीरता के बिना कलाकारी वाला है''* (बार्कले, 170)।[18]जॉन मक्लिंटॉक ऐंड जेम्स स्ट्रॉन्ग, *साइक्लोपीडिया ऑफ़ बिब्लिकल, थियोलोजिकल, ऐंड एक लेसियस्टिकल लिट्रेचर* (न्यू यॉर्क: हार्पर एंड ब्रदर्स, 1896), 1:326 में ''अकविल्ला।'' 128 ई. में LXX के संशोधन के रूप में छपी अकविल्ला की पुस्तक में पहले हमारे अधुनिक अर्थ के साथ हमारे इस्तेमाल हुआ; उस समय से पहले इसका अर्थ केवल ''बुरा व्यक्ति'' होता था। पुराने नियम में अय्यूब 34:30 में इसके समान शब्द का अनुवाद ''भक्तिहीन'' हुआ है (KJV; ASV)।[19]विलियम बार्कले, *ए न्यू टैस्टामैंट वर्डबुक* (न्यू यॉर्क: हार्पर ऐंड रो, एन.डी.), 57. [20]वहीं, 58.

[21]विलियम हैंड्रिक्सन, *एक्सपोज़िशन ऑफ़ द गॉस्पल अकॉर्डिंग टू मरकुस,* न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1975), 275. [22]सप्तति इब्रानी बाइबल का यूनानी अनुवाद है। आम तौर पर इसे ''LXX'' लिखा जाता है जिसका अर्थ ''सत्तर'' है क्योंकि लगभग 250 ई.पू. में सिकन्द्रिया में लगभग सत्तर विद्वानों द्वारा इस अनुवाद को तैयार किया गया था।[23]यीशु या प्रेरितों ने पुराने नियम से जब भी उद्धृत किया, चाहे उसे इब्रानी शब्दों में बदला गया हो, वे उपयुक्त इब्रानी बाइबल की परमेश्वर की ओर से स्वीकृत व्याख्या दे रहे होते थे।[24]मिशनाह *सैन्हेड्रिन* 11.3. [25]बार्कले, *मरकुस,* 171. [26]एक समानांतर विवरण मत्ती 15:3–6 में है।[27]जे. डब्ल्यू. मैक्गार्वे ने टिप्पणी की है कि ये ''उद्धारकर्त्ता के सम्बोधनों में ताने के कुछ उदाहरणों में से एक है'' (जे. डब्ल्यू. मैक्गार्वे, द *न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्री,* अंक 1, *मैथ्यू ऐंड मरकुस* [डेस मोइनेस: यूजीन एस. स्मिथ, 1875], 307)। [28]हैंड्रिक्सन, 277. [29]देखें निर्गमन 20:12; 21:17; व्यवस्थाविवरण 5:16; मत्ती 19:19; मरकुस 10:19; लूका 18:20; इफिसियों 6:2; और मत्ती 15:4 में समानांतर विवरण।[30]मरकुस, *मरकुस,* 172.

[31]वहीं, 173. [32]किसी को लगेगा कि ऐसे मामलों में फरीसियों को गोपनीयता की शपथ होती थी, परन्तु परमेश्वर उनके मन के विचारों को जानता था।[33]7:13 के अंत में ''और ऐसे ऐसे बहुत से काम करते हो'' अभिव्यक्ति कई बेहतरीन हस्पलिपियों में नहीं मिलती, जिस कारण NIV में इसे निकाल दिया गया है; परन्तु NASB, ESV, और NRSV में इसे रहने दिया गया है।[34]यीशु सब लोगों के मनों को जानता था इसलिए वह उे विचारों और उनके इरादों पर सीधे बात कर सकता था।[35]एक समानांतर विवरण मत्ती 15:10, 11 में है।[36]वारेन डब्ल्यू. वियर्सबे, द *वियर्सबे बाइबल कॉमैंट्री: न्यू टैस्टामैंट* (कोलोराडो स्प्रिंग्स, कोलोराडो: डेविड सी. कुक, 2007), 110 से लिया गया है।[37]बार्कले, *मरकुस,* 175. ये घटनाएं लगभग 165 ई.पू. में घटीं (देखें 1 मक्काबियों 1:62, 63)। 1 मक्काबियों चाहे दोनों नियमों के बीच के काल का कुछ विश्वसनीय इतिहास है, परन्तु 2 मक्काबियों उतना विश्वसनीय नहीं है।[38]जे. डी. डग्लस, सम्पा, द *न्यू बाइबल डिक्शनरी* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1962), 42 में डी. एच. व्हीटन, ''एंटियोकुस।''[39]आयत 16 सम्भवतया मत्ती 11:15 से ली गई थी। यह कथन प्राचीनतम हस्तलिपियों में या अति आधुनिक संस्करणों में यहां नहीं मिलता।[40]एक समानांतर विवरण मत्ती 15:15–20 में है।

[41]कर्नाघन 137. [42]नये नियम में *parabolē* शब्द के कई अर्थ हैं। एक दृष्टांत से बड़ी सच्चाई का पता चल सकता है परन्तु इस शब्द का इस्तेमाल किसी दूसरी जगह किसी भेद के लिए भी हो सकता है। ''दृष्टांत'' का मूल कार्य तुलना के लिए किसी दूसरे के साथ एक विचार को रखना है।[43]कर्नाघन, 152. [44]पहली सदी ईसवी के बीच के समय को छोड़कर जब क्लौदियुस ने उन्हें रोम से निकाल दिया, बहुत से यहूदी रोम में रहते थे (देखें मरकुस 18:2)।[45]परन्तु यहां पर यीशु यह समझा रहा था कि ''लालच'' उन व्यवहारों में से एक है जो व्यक्ति को दूषित

कर देते हैं। सब्त को मनाए जाने को छोड़ दस आज्ञाओं के सभी नियम, नये नियम में भी बताए गए हैं। [46]इंग्लिश, 146. [47]ऐलन ब्लैक, *मरकुस,* द कॉलेज प्रेस NIV कॉमैंट्री (जोप्लिन, मिसोरी: कॉलेज प्रेस पब्लिशिंग कं., 1995), 134. [48]जोसेफ हेनरी थेयर, *ए ग्रीक-इंग्लिश लैक्सिकन ऑफ़ द न्यू टैस्टामैंट* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: ज़ौंडरवन पब्लिशिंग हाउस, 1962), 532. [49]बार्कले, *मरकुस* 176. [50]अविवाहित स्त्री के साथ अवैध सम्बन्ध ''परस्त्रीगमन'' की श्रेणी में आएंगे।

[51]थेयर, 79. [52]बार्कले, *वर्डबुक,* 26. [53]हैंड्रिक्सन, 288. [54]इंग्लिश, 144. [55]एक समांनातर विवरण मत्ती 15:21 में है। [56]एक समानांतर विवरण मत्ती 15:22–28 में हैं। [57]कई भविष्यद्वाणियों में संकेत था कि अन्यजातियों को भी मिलाया जाना था। उदाहरण के लिए देखें उत्पत्ति 22:18; यशायाह 11:10; 60:3; 65:1; होशे 2:23; मीका 4:1–3. [58]परन्तु यीशु ने सूबेदार जिसका सेवक बीमार था (मत्ती 8:5–13; लूका 7:1–10) और दुष्टात्मा से ग्रस्त व्यक्ति सहित जो कब्रों में रहता था (मरकुस 5:1–20) अपनी सेवकाई में अन्यजातियों की सहायता की। लूका 10:30–37 में धन्य सामरी का यीशु का दृष्टांत उस तरस को दिखाता है जो इस तुच्छ जाति के लोगों पर उसका था। [59]कइयों ने सुझाव दिया है कि यीशु ने उसे प्रोत्साहित करने के लिए मुस्कुराते हुए ये सब बातें कहीं। [60]द *चर्च स्टैंडर्ड* 80 (फरवरी 13, 1901): 575 में दर्ज एफ़. ओ. ओसबॉर्न, एडरस टू एनुअल कॉनफ्रेंस ऑफ़ चर्च क्लब्स।

[61]देखें 9:14–29. [62]केवल मरकुस ही इस चंगाई के बारे में बताता है। देखें मत्ती 15:29–31. [63]वियर्सबे, 373. [64]यह एक और संकेत लगता है कि उनकी निर्बलताओं के बावजूद यीशु सब लोगों की समस्याओं को समझता था। [65]बार्कले, *मरकुस,* 184. एक पुराना विचार है कि मनुष्य के थूक के बजाय कुत्ते के थूक में अधिक निरोगकारी शक्ति है। यदि यह सच है तो लूका 16:19–21 में लाज़र के घावों को कुछ चाटने से वास्तव में से कुछ सहायता मिलती होगी। [66]वियर्सबे, 111. [67]उत्पत्ति 1:31 में परमेश्वर के कामों को ''अच्छा'' कहा गया है। हमारा परमेश्वर वास्तव में जहां तक हो सके हमारे लिए सब कुछ करता है।